क्षमा देवी राव

राधावल्लभ त्रिपाठी

अनुक्रम

भूमिका

अध्याय 1: क्षमादेवी राव की साहित्यिक पृष्ठभूमि व संस्कृत में आधुनिक साहित्य का विकास

अध्याय 2: जीवन तथा कृतियाँ

अध्याय 3: क्षमादेवी के स्वतंत्रतासंग्रामविषयक महाकाव्य

अध्याय 4: क्षमादेवी का कथासंसार -- पद्यात्मक आख्यान

अध्याय 5: क्षमादेवी का कथासंसार - कहानियाँ

अध्याय 6: यात्रावृत्त, जीवनी तथा खंडकाव्य

अध्याय 7: क्षमादेवी के चरितपरक महाकाव्य

उपसंहार : क्षमादेवी की साहित्यिक उपलब्धियाँ

पुस्तकसूची

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने आधुनिक संस्कृत साहित्य की अग्रदूत क्षमा देवी राव की जीवनयात्रा, साहित्य यात्रा तथा उनके साहित्यसंसार का अंतरंग परिचय देने का प्रयास किया है। पंडिता क्षमा देवी संस्कृत की पहली रचनाकार हैं, जिनकी सर्जनात्मक ऊर्जा योरोप तथा योरोपीय साहित्य के साक्षात् संपर्क से स्फूर्त हुई। तथापि उनकी रचनाभूमि भारतीय परंपरा व संस्कारों के गहरे बोध पर अवस्थित है। अपनी कल्पनाशीलता, नवाचार व नवानुसंधान की प्रवृत्ति तथा परंपराओं की गहरी समझ के साथ क्षमा देवी ने समकालीन संस्कृत साहित्य को कई नई विधाओं से संपन्न किया। वे आधुनिक संस्कृत साहित्य की परंपरा में पहली रचनाकार हैं, जिनकी कृतियों में भारत के जनसामान्य – विशेषतः स्त्रीसमाज – के संघर्ष, स्वप्न तथा आकांक्षाओं को संवेदनाप्रवण दृष्टि के द्वारा अभिव्यक्ति मिली। क्षमा देवी का विपुल साहित्य महाकाव्य, खंडकाव्य, जीवनी, कथा, नाटक आदि विविध विधाओं में विन्यस्त है। उस समग्र साहित्य का मूल भाव स्वराज्य है।

साहित्य अकादेमी ने इस कृति के निर्माण का मुझे अवसर दिया, इसके लिये अकादेमी व उसके अधिकारियों का कृतज्ञ हूँ। इस के प्रणयन के लिये क्षमा राव का साहित्य उपलब्ध कराते हुए डा. ऋषभ भारद्वाज, डा. बलराम शुक्ल तथा प्रो. राजंद्र नानावटी ने जो मेरी सहायता की है, वह अमूल्य है। डा. प्रवीण पंड्या ने पांडुलिपि को आद्यंत पढ़ कर उसे संशोधित किया। उनके साथ हुए विचारविमर्श के परिणामस्वरूप क्षमा देवी के लिये कवयित्री शब्द के स्थान पर सर्वत्र कवि शब्द का ही प्रयोग मैंने यहाँ किया है।

आशा है कि यह प्रयास सुधी पाठकों में संस्कृत के नये साहित्य की सही समझ विकसित करने में सहायक होगा।

-- राधावल्लभ त्रिपाठी

अध्याय 1

क्षमादेवी राव की साहित्यिक पृष्ठभूमि व संस्कृत में आधुनिक साहित्य का विकास

बींसवीं शताब्दी ज्ञान-विज्ञान के अभूतपूर्व उन्मेष का समय है। यह संस्कृत साहित्य में रचनाओं के उन्मेष का समय भी है। इस सदी के अवतरण के साथ देश में अंग्रेजी राज अपनी जड़ें जमा चुका था। 1857 की क्रान्ति के विफल हो जाने के बाद राजनैतिक स्तर पर एक स्थिरता का युग आया था। इस स्थिरता के दौर ने पारम्परिक संस्कृत पंडित तथा संस्कृत के रचनाकार को योरोपीय मानस को समझने तथा योरोप की सभ्यता के साथ परिचित होने का भी अवसर दिया था। बींसवीं शती के अवतरण के साथ ही संस्कृत रचनाकारों का देश की परिवर्तित परिस्थितियों को समझ कर अपने समय और समाज को रचना में प्रस्तुत करने का संरम्भ देखा जा सकता है। संस्कृत साहित्य की सहस्रों वर्ष प्राचीन परंपरा इस युग में नई करवट लेती है। अनेक नवीन विधाओं में इस काल में रचना का उपक्रम हुआ, विषय और शैली के स्तर पर नये प्रयोग किये गये, तथा नई विधाओं का अवतरण हुआ।

राजा केरल वर्मा के भतीजे राजराज वर्मा (1863- 1918 ई.) ने संस्कृत में *गैर्वाणीविजय* नाम से एक नाटक लिखा था । इस नाटक में संस्कृत भाषा खिन्न होकर विलाप करती हुई ब्रह्मा के पास जाकर कहती है कि मेरे देश भारत में अब मेरी दुर्दशा हो रही है,और मैं एक विदेशी भाषा अंग्रेजी की दासी बनाई जा रही हूँ। मेरी कन्याएँ (अन्य भारतीय भाषाएँ) आपस में झगड़ रही हैं। ब्रह्मा के आदेश पर विदेशी भाषा अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाएं ब्रह्मलोक में आती हैं। अर्धनग्न वैदेशिक वेषभूषा में प्रविष्ट अंग्रेजी good morning कह कर ब्रह्मा का अभिवादन करती है। अंग्रेजी और संस्कृत अपना विवाद ब्रह्मा के सामने रखती हैं। नारद अंग्रेजी भाषा की कमियाँ गिनाते हैं। अन्त में ब्रह्मा सब भाषाओं में आपस में सौहार्द स्थापित करते हैं।

राजराज वर्मा ने शेक्सपीयर के ओथेलो नाटक का गद्य में रूपान्तर किया तथा अंग्रेजी राज्य को ले कर *आङ्ग्लसाम्राज्य* नामक महाकाव्य की भी

रचना की। इस तरह की रचनाओं में हम संस्कृत के रचनाकारों में इतिहास की नई समझ व सामाजिक राजनैतिक चेतना के नये बोध की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। पहली बार संस्कृत के पंडित व कवि एक अत्यंत समुन्नत सभ्यता का सामना करते हैं।

राजराज वर्मा केरल के थे। उनके समकालीन श्रीश्वर विद्यालंकार बंगाल के निवासी थे। श्रीश्वर विद्यालंकार ने नयी सभ्यता और राज्यप्रणाली की समाशंसा करते हुए योरोपीय मानस को भी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनकी दो कृतियाँ – *दिल्लीमहोत्सव* महाकाव्य तथा *विजयिनी* काव्य ऐतिहासिक महत्व की रचनाएँ हैं, तथा इन्हें अपने समय के महत्वपूर्ण दस्तावेज भी कहा जा सकता है। पारम्परिक शैली का महाकाव्य होते हुए भी *दिल्लीमहोत्सव* में ईस्वी सन् में तारीखें दी गई हैं तथा ऐतिहासिक घटनाओं का कवि ने प्रत्यक्ष दृष्टवत् वर्णन भी किया गया है। जो कवि कलिसंवत्सर या अधिक से अधिक शक अथवा विक्रमसंवत्सर के काल में बसता था, वह क्रिस्तु (क्रिश्चियन) वर्ष का उल्लेख करने लगा, तो वह भारतीय दिक्काल को तज कर योरोपीय दिक्काल में बसने की तैयारी करने लगा। अनेक नये शब्द कवि श्रीश्वर विद्यालंकार ने नवीन उपादानों और नये वातावरण को साकार करने के लिए अपने काव्य में गढ़े हैं या अंग्रेजी से लिए हैं। दिल्लीमहोत्सवकाव्य अंग्रेजी राज्य के प्रति आस्था और भक्तिभाव से प्रेरित है। पूरे पहले सर्ग में लार्ड कर्जन की प्रशंसा है। अंग्रेज जाति को कवि श्रेष्ठ मानता है। लार्डकर्जन 1898 में वाइसराय हो कर यहाँ आया था। यह महाकाव्य लार्डकर्जन के शासन सम्भालने के समय ही लिखा गया है। अंग्रेजी शासन के प्रति आस्था का भाव होते हुए भी *दिल्लीमहोत्सव महाकाव्य* का कवि राष्ट्रभावना की अभिव्यक्ति में अग्रसर है। समग्र भारत के भूगोलिक स्वरूप तथा भारतीय वसुन्धरा की नैसर्गिक अभिरामता की चेतना अब संस्कृत कवि में एक राजनीतिक बोध के साथ प्रकट होती है। दिल्लीमहोत्सव का वर्णन करते हुए विद्यालंकार कहते हैं-

कश्मीरद्वारशोभां रचयति वपुषाद्यापि योद्यानभूमि-
र्दूरादाकाशनीचैः कुसुमशतवती नन्दनोद्यानमेव।
यामेनां राजराज्ये भणति जनगणो कुद्सिया कुद्सियेति
द्राक्षाम्राम्रातकाद्यैस्तरुभिरतिगुरुर्वृक्षवाटीव भाति।।(4-3)

कर्जन के ही भाषण में देशवासियों को दूसरों की अनुकृति न करने और देश गौरव का नवावतार रचने का सन्देश कवि उसके मुख से दिलवाता है। कर्जन के लम्बे भाषण की जो प्रस्तुति इस काव्य में करायी गयी है, वह देश के प्रति कवि की अपनी चिंता और उसके अपने प्रगतिशील सोच का प्रतिफलन है। वह राजा महाराजाओं के द्वारा देश के धन के दुरुपयोग और विलासिता में

उसे खर्च करने पर खेद प्रकट करता है। योरोप की यान्त्रिक सभ्यता को अपनाने से देश में वह नई क्रान्ति की सम्भावना देखता है। उस काल की मनःस्थिति को राष्ट्रगौरवसंवर्धन की कामना के साथ यह काव्य व्यक्त करता है। इसलिये कर्जन के मुख से भारत की महत्ता का भी बखान कवि करवाता है- इसके साथ ही श्रीश्वर विद्यालंकार ने यह भी सूक्ष्म संकेत दिया है कि दिल्ली के विगत गौरव का स्मरण कर कर के शोकसंतप्त भारतीयों के मन में नये राजा के अभिषेक से जो आशा का संचार हुआ है,उस आशा के रंगमंच पर भी अकस्मात् पटाक्षेप की आशंका बनी हुई है।

काव्य के अन्त में श्रीश्वर विद्यालंकार का सन्देश स्पष्ट है। वे भारत के विगत गौरव का पुनरुज्जीवन और संवर्धन चाहते हैं। वे देश को कृषि और वाणिज्य तथा विभिन्न शिल्पों में अग्रसर बनाने की कामना भी रखते हैं। वे यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि कर्जन के राज्याभिषेकमहोत्सव के वर्णन के द्वारा विनय प्रकट करना उनका उद्देश्य नहीं था, न ही वे अंग्रेज शासन से अपने लिए किसी प्रत्याशा से प्रेरित होकर यह रचना कर रहे थे। वे तो भारत के गौरव को पुनर्जीवित देखना चाहते हैं।

श्रीश्वर विद्यालंकार की ही दूसरी रचना विजयिनीकाव्य है। इस काव्य में रानी विक्टोरिया का जीवनचरित्र है। योरोप के वातावरण और नवसभ्यता से कवि ने इसमें साक्षात्कार किया है। कवि विद्यालंकार की व्युत्पत्ति और ज्ञान तथा साहित्य के नये वातायनों से परिचय यहाँ विशेषरूप से प्रतिफलित है। अंग्रेजी कविता के प्रभाव से संस्कृतवृत्तों में यहाँ अन्त्यानुप्रास भी लाया गया है। कवि का मुख्य उद्देश्य संस्कृत पण्डितों या पाठकों को योरोप की सभ्यता के इतिहास और उसकी उपलब्धियों से परिचित कराना है।

मुकुटाभिषेक (1912) नाटक चेन्नपुरी की संस्कृत पाठशाला के अध्यापक नारायण दीक्षित की रचना है। यह बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रची गयी उन कृतियों में से एक है, जिनमें संस्कृत का सर्वथा पारम्परिक पण्डित आधुनिक परिवेश को समझने और उसे अपनी शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास करता दिखाई देता है। इस नाटक में 12 दिसम्बर 1911 के दिन दिल्ली में हुए राज्याभिषेक की घटना का चित्रण है। नारायण दीक्षित ने अंग्रेज पात्रों को प्रस्तुत करते हुए अपनी समझ से दिल्ली में हुए समारोह का यथावत् चित्रण किया। अतलान्तिक, असक्सान्द्रा, अपोलोबन्ध आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग इन्होंने अपनी कृति में किया तथा अनेक नये शब्द भी आवश्यकतानुसार गढ़े; जैसे- आत्मीय सचिव, उपशासक (लेफ्टीनेंट गवर्नर) ऊष्मानस् या ऊष्मशकट (रेल),वाष्पनौका (स्टीमर), प्रसाधनशकट (सैलून) स्वनबिम्ब (ग्रामोफोन) आदि। नारायण दीक्षित अपने समय के वातावरण का चित्रण करते हैं, योरोप के सन्दर्भ से भारतीय पर्यावरण में आ रहे बदलावों

को भी आँकते हैं ,पर उनकी रचनाशैली पारम्परिक बन्ध और सौन्दर्य ले कर चलती है। इसी क्रम में एक और महत्त्वपूर्ण रचना महामहोपाध्याय लक्ष्मणसूरि (जन्म 1859) का दिल्लीसाम्राज्य नाटक है। लक्ष्मणसूरि अपने समय के एक गण्यमान पण्डित थे। मैसूर सरकार तथा भारत शासन द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया था। उन्होंने दिल्लीसाम्राज्य के अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाएँ लिखीं, जिनमें *पौलस्त्यवधनाटक*, *घोषयात्रा* डिम, *भीष्मविजय*, *भारतसंग्रह* और *नलोपाख्यानसंग्रह*- ये तीन गद्यकाव्य तथा *जार्जशतक* काव्य और *कृष्णलीलामृत* महाकाव्य उल्लेखनीय हैं *दिल्लीसाम्राज्य* नाटक में पाँच अंकों में वाइसराय हार्डिंग्ज के प्रयासों से दिल्ली में जार्ज पंचम के आगमन और उनके अभिषेक की घटनाएँ चित्रित हैं। इसमें दूसरे अंक में इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट में जार्ज पंचम की भारतयात्रा को लेकर प्रस्तुत कराई गयी बहस एक काल्पनिक वृत्तान्त है, शेष घटनाएँ तथा पात्र वास्तविक हैं। जार्ज पंचम का भारत आगमन उस काल की एक ऐतिहासिकमहत्त्व की घटना थी, जिसका चित्रण उस घटना के साथ ही लक्ष्मण सूरि ने उस पर नाटक रच कर किया। नये युग के अवतरण के साथ संस्कृत कवि अपनी प्रशस्ति में भी अपेक्षाकृत वस्तुपरक हुआ है, और उसके सोच का वृत्त भी विशाल हुआ है। वह अपनी प्रशस्ति के विषय को केवल महिमामण्डित नहीं करना चाहता, उसके अवदान को देश के सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भ में समझना चाहता है। अंग्रेज शासकों पर प्रशस्तियों की रचना तो अठारहवीं- उन्नीसवीं शताब्दियों के संस्कृत कवियों ने भी की थी, पर उनसे इन रचनाओं का स्वर कुछ बदला हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से यह स्वर परिवर्तन लक्षित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बंगाल के कविरत्न नारायण चन्द्र का 1882 में प्रकाशित काव्य *इडनचरितम्* लिया जा सकता है। इस काव्य में लेफ्टिनेंट गवर्नर एशले इडन की जीवनी है। प्रणेता ने वस्तुपरक ढंग से इडन का चरित लिखा है, उनकी प्रशंसा में धरती औरआकाश एक नहीं किया। धर्माधिकार (बिशप), गोप (मजिस्ट्रेट) देशपाल (कमिश्नर) राजस्वविभाग (बोर्ड आफ रेवेन्यू) शास्ता (गवर्नर) राजप्रतिनिधि (वाइसराय) प्रवर देशपाल (चीफ कमिश्नर) आदि शब्द इस कृति में भी गढ़े गए हैं। अपनी कृति को अधिकाधिक प्रामाणिक रूप से विवरणात्मक बनाने के लिए कवि ने *इडनचरितम्* के सात सर्गों में प्रायः अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग किया है।

इसके साथ ही उन्नीसवीं शताब्दी से ही संस्कृत रचनाकारों और पण्डितों के दो वर्गों में विभाजन की स्थिति और इनकी सक्रियता भी इस प्रकार की रचनाओं से समझी जा सकती है। उक्त सभी रचनाकारों ने योरोप की सभ्यता और अंग्रेजों के सम्पर्क को वांछनीय माना है। वे पारम्परिक

भारतीय प्रज्ञा की उदारता के प्रतिनिधि हैं, जो इतर संस्कृतियों के अच्छे तत्त्वों को आत्मसात् करती आयी है। श्रीश्वर विद्यालंकार तथा लक्ष्मण सूरि ने अपनी रचनाएँ उस समय के योरोप के श्रेष्ठ संस्कृत विद्वानों को भी पढ़ने को दीं और उनका इन पर अभिमत प्राप्त किया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से संस्कृत का गद्य तथा वस्तुपरकता की ओर झुकाव बढ़ता है।बीसवीं शताब्दी के अवतरण के साथ संस्कृत रचना में आयी यह वस्तुपरकता और गद्य की ओर झुकाव की एक परिणति सामाजिक, दार्शनिक और राजनीतिक विषयों पर रचित निबन्धों के रूप में होती है। दूसरी ओर राष्ट्रीय नवजागरण तथा पुनरुत्थानवाद का गहरा प्रभाव भी इस काल में लिखे गये संस्कृत साहित्य पर परिलक्षित होता है।

इस शती को संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात कह सकते हैं। योरोप से सम्पर्क और नवीन राजनीतिक चेतना ने संस्कृत कविता के क्षेत्र में नये वातायन खोल दिये। पारम्परिक विद्या में दीक्षित पण्डितों ने नये युग और नयी विधाओं का चुनौती के भाव से साक्षात्कार किया और रचना की नयी धरती भी खोजी। संस्कृत ही नहीं, देश की अन्य भाषाओं के साहित्य में भी यह काल नवजागरण और नयी चेतना के साहित्य का काल है।

पर धीरे- धीरे परिस्थितियाँ बदलीं। मैकाले की शिक्षानीति लागू होने के पूर्व तथा अंग्रेजी शासन की नीतियों का विकृतरूप जब तक स्पष्ट नहीं हुआ था, तब तक संस्कृत के रचनाकारों में अपनी भाषा के गौरव और अपनी रचनाशीलता के प्रति अदम्य विश्वास था। अंग्रेजी को सारे देश में माध्यम की भाषा के रूप में थोपे जाने और शिक्षानीति में परिवर्तन से उनका उत्साह भंग हुआ, शनैः शनैः एक हताशा की भावना उनमें घर करने लगी। जिस संरम्भ से उन्नीसवीं शती में संस्कृत पत्र पत्रिकाओं ने नये काव्य, योरोपीय साहित्य के अनुवाद, नये विषयों पर चिन्तन और नयी विधाओं में लेखन का समारम्भ किया था, वह छीजता चला गया। पत्रिकाओं की संख्या भी घटने लगी। संस्कृतचन्द्रिका, सूनृतवादिनी, ज्योतिष्मती जैसी पत्रिकाएँ, जो स्वातन्त्र्य संग्राम के यज्ञ में आहुति दे रही थीं, अंग्रेज सरकार के द्वारा प्रतिबंधित की गईं। संस्कृत के कवि और पण्डित स्वतन्त्रता के आन्दोलन में सक्रिय थे। कांग्रेस की तो स्थापना ही बम्बई के संस्कृत महाविद्यालय में हुई थी। पर स्वतन्त्रता के पश्चात् अंग्रेजों के द्वारा छोड़ी गयी मूलबद्ध औपनिवेशिक मानसिकता, मूल्यबोध का क्षरण और परम्पराओं की उपेक्षा ने ऐसे कवियों और पण्डितों को समाज की मुख्यधारा से काट सा दिया। समाज में बड़े समुदाय ने संस्कृत को अतीत की वस्तु और उसके साहित्य को भी प्राचीन धरोहर मात्र मान लिया। संस्कृत की जीवनीशक्ति और उसमें रचना के सातत्य को अनदेखा

किया जाने लगा। सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि स्वयं संस्कृत के ही पण्डितों या आधुनिक पद्धति से अधीत विद्वज्जनों में संस्कृत में नयी काव्यरचना के प्रति एक तिरस्कारपूर्ण दुराग्रह का भाव पनपने लगा।

डा. व्ही. राघवन् ने पश्चिमी सभ्यता व योरोप के संसर्ग से संस्कृत रचनाकार में आये प्रारम्भिक उत्साह और तत्पश्चात् जन्मी हताशा का विश्लेषण करते हुए लिखा है- "आधुनिक काल में भारत और यूरोप का सम्पर्क दोनों भूखण्डों के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण रहा है। पश्चिम ने संस्कृत की खोज की, जोकि पुनर्जागरण के समय से यूरोपीय विचारधारा में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, संस्कृत की यह खोज दो प्रकार से प्रभावशाली सिद्ध हुई। एक ओर जहाँ आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयता ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण निर्मित किया, वहाँ दूसरी ओर वह पश्चिमी विचार और जीवन की पद्धतियों में बँट गई। इसप्रकार के अध्ययन की प्रथम पद्धति परम्परित टोलों, पाठशालाओं तथा कालेजों में विकसित होती रही। पश्चिम के साहित्य और विचारधाराओं का प्रभाव शिक्षा एवं शासन के द्वारा स्पष्ट होने लगा। उसकी प्रतिक्रिया दोनों प्रकार के संस्कृतज्ञों पर पड़ी। फलतः आधुनिक यूरोपीय प्रभाव के साथ साथ संस्कृत साहित्य एक नई अवस्था में प्रवेश करने लगा।"

पहला प्रभाव तो यह हुआ कि संस्कृत में जो रचनात्मक कार्य तब तक चल रहा था, उसे एक नई प्रेरणा मिली, परन्तु धीरे धीरे अंग्रेजी अखिल भारतीय माध्यम के रूप में उस स्थान पर कब्जा जमाने लगी, जो पहले संस्कृत का था, और संस्कृत सीखने का माध्यम पहले जो प्रादेशिक भाषाएँ थीं, उनके बदले में अंग्रेजी माध्यम बनी। संस्कृत इसप्रकार से दैनिक जीवन और मातृभाषा से दूर होती गई, उसका अध्ययन अधिकाधिक पुरातत्व की भाँति होने लगा। अंग्रेजी प्रभाव के प्रथम आघात का सामना करते हुए संस्कृत के पण्डित उत्साह से संस्कृत की पत्रिकाएँ सम्पादित करते थे, विदेशी ग्रन्थों का अनुवाद करते थे, उपन्यास और कहानियाँ लिखते थे, पर धीरे धीरे एक विवशता और निस्सहायता की भावना उनमें आती गई। संस्कृत अभिव्यक्ति के एक सजीव माध्यम के रूप में छीजने लगी, और अध्ययन का एक जड तथा अरोचक विषय बनने लगी। संस्कृत के आश्रयदाता भी, जो संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए बड़े जोरों से तर्क करते थे, संस्कृत में मौलिक लेखन को उपेक्षा से देखने लगे।[1]

पर प्रो. राघवन् द्वारा खींचे गये संस्कृत के इस निराशाजनक चित्र में आशआ के नये रंग बार बार भरे जाते रहे।

---

[1] आज का भारतीय साहित्य पृ. 268-269

मात्रा की दृष्टि से इस शती में जितना संस्कृत काव्य रचा गया है, उतना विपुल काव्य इस भाषा में कदाचित् अन्य किसी युग में नहीं रचा गया है। प्रतिवर्ष सहस्रों लघुकाव्य पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हो रहे हैं, तथा पुस्तकाकार भी निरन्तर सामने आ रहे हैं। बीसवीं शती में संस्कृत के समसामयिक रचनाकर्म में नये वातायन भी खुले हैं। एक ओर संस्कृत कवियों का प्राचीन काव्य का संस्कार, रसात्मकबोध और भाषा के परिनिष्ठित रूप तथा शब्द की साधुता का अवधान जागरित है,तो दूसरी ओर प्रजातन्त्र की नयी व्यवस्था, बदलते राजनीतिक, सामाजिक पर्यावरण और विश्व की घटनाओं ने उन्हें प्रभावित और विचलित भी किया है। विश्व साहित्य के अद्यतन रचनाकर्म और उसकी नयी प्रवृत्तियों से भी युवा संस्कृत कवि परिचित और प्रभावित हुए हैं।

इस शती के आरम्भिक दशकों में राष्ट्रिय भावना का एक प्रबल ज्वार संस्कृत काव्य में आया। उन्नीसवीं शती के अन्त तक अंग्रेजी शासन के प्रति पण्डितों में जो विश्वास भाव बना हुआ था, अब वह भी चुक गया। संस्कृत कवि ने भारत की स्वतन्त्रता का स्वर गुंजित किया, गान्धी, तिलक, जवाहर, बोस आदि राष्ट्रिय विभूतियों के गौरव का गान किया।

यह एक तथ्य है कि संस्कृत भाषा ने नये से नये वातावरण, जीवनानुभव या परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिये कवियों को निरन्तर उत्प्रेरित किया। कुछ ऐसे कवियों ने संस्कृत में इस काल में अत्यन्त प्राणवान् काव्यरचना की, जो सीधे सीधे आजादी की लड़ाई में सम्मिलित थे।

व्ही. राघवन् आदि विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी में योरोप की संस्कृति तथा ज्ञानविज्ञान के साथ सम्पर्क से संस्कृत की सर्जनाधारा में नई प्रवृत्तियों का सूत्रपात माना है। पश्चिम से सम्पर्क का एक प्रभाव संस्कृत जगत् पर यह हुआ कि पण्डित नये ज्ञान विज्ञान पर लेखनी चलाने में प्रवृत्त हुए। अंग्रेजी के व्याकरण लिखे जाने लगे। मधुसूदन तर्कालंकार का *इंग्लैण्डीयव्याकरणसारः* 1835 में प्रकाशित हुआ। संस्कृत में योरोप का इतिहास पण्डितों ने लिखा। *अंग्रेजचन्द्रिका* (मद्रास 1801) तथा *इतिहासतमोमणिः* (मद्रास 1813) में विनायक भट्ट ने आधुनिक अर्थ में इतिहास रचना का उपक्रम किया। इसके बाद वाराणसी के संस्कृत कालेज के एक पण्डित ने नोउम आर्गेनुम का संस्कृत में अनुवाद *बेकनीयसूत्रव्याख्यानम्* नाम से वाराणसी से प्रकाशित कराया। बर्कले के *Principles of Human Knowledge* का *ज्ञानसिद्धान्तचन्द्रिका* नाम से तथा लाक के Essays Concerning Human Understanding का अनुवाद *मानवीयज्ञानविषयकशास्त्रम्* के नाम से सामने आया।

इसप्रकार के अनेक ग्रन्थों के प्रणयन के पीछे अंग्रेज पादरियों के धर्मप्रचार की भावना भी कारण थी। स्वयं अंग्रेज पादरियों ने इस उद्देश्य से संस्कृत में भी कलम चलाई। रोजारियों की *ब्राह्मण –रोमन- कैथोलिक-संवादः* इसप्रकार की रचनाओं में उल्लेख्य है। रामराय वसु की *ईसाईविवरणामृतम्* तथा *ज्ञानोदयः* नामक ग्रन्थों में तो हिन्दुत्व की बखिया उधेड़ दी गई। बाइबिल के लगभग दो दर्जन अनुवाद इस काल में संस्कृत में प्रकाशित हुए।[1] अंग्रेजी के साथ राजकाज की भाषा संस्कृत बराबर बनी रही।

राजनीतिक चेतना का अवतरण उन्नीसवीं सदी से ही संस्कृत साहित्य में स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। सन् सत्तावन के विफल क्रान्तियुद्ध के बाद अंग्रेजी शासन ने तुष्टीकरण और सुधारवाद की नीति अपनाई, जिसका भारतीयों के द्वारा भी स्वागत किया गया। शासन के सूत्र महारानी विक्टोरिया ने सीधे अपने हाथों में ले लिये। अप्पा शास्त्री राशिवडेकर ने सूनृतवादिनी के एक अंक में (1.5) *चक्रवर्तिन्याः घोषणापत्रम्* शीर्षक से लेख लिखा। पर प्रशस्तिपरकता तथा राजभक्ति के समकालीन भावों को शीघ्र ही राष्ट्र के प्रति निष्ठा के भाव ने विस्थापित कर दिया। इस निष्ठा की परोक्ष प्रतिच्छवि कहीं कहीं अंग्रेज शासकों के लिए लिखी गयी प्रशस्तिपरक रचनाओं में भी मिल जाती है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु के द्वारा महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन पर प्रशस्तियों का संग्रह तैयार किया गया। इनके पीछे अतिथि देवो भव की भारतीय भावभूमि थी, पर इनमें कुछ प्रशस्तियों में अंग्रेजी राज में की दुर्दशा तथा दरिद्रता का मार्मिक उल्लेख हुआ है। इसमें एक कवि ने यह भी कहा है कि दीन और फटेहाल तथा भूख से पीडित हम भारतीयों को जो आपने सान्त्वना दी उससे तो हमारा दुःख और बढ़ गया-

दीनानां खलु दीनकर्पटभृतां क्षुत्पीडितानां गृहे
गत्वा सान्त्वनकारिणा द्विगुणितं दुःखं त्वदालोकनात्।।

भारतेन्दु के मानसोपायनम् में 66 पण्डितों की संस्कृत रचनाएँ हैं। अनेक रचनाओं में वैदेशिक शासकों के छद्म तथा दुरंगी नीति का परोक्ष कथन के द्वारा चित्रण हुआ है। भारतेन्दु ने 1870 में महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन पर सुमनोञ्जलिः का सम्पादन कर के 10 मार्च 1870 को उसे प्रकाशित कर के समर्पित किया। इसमें 15 पण्डितों की रची संस्कृत प्रशस्तियाँ शामिल थी। पर इन प्रशस्तियों में भी पण्डितशीतलाप्रसाद देश में दुर्भिक्ष जन्य दुरवस्था का चित्रण करते हैं।[2]

[1] संस्कृत का समाजशास्त्र, पृ. 68

[2] वही, पृ. 84

1911 में जार्ज पंचम के भारत आगमन पर भी संस्कृत में पंचमप्रशस्तियाँ पञ्चमस्वर में देश के विभिन्न भागों से गुञ्जित हुई। पर इसी अवधि में देश में दुर्भिक्ष का चित्रण करने वाली रचनाएँ भी बड़ी संख्या में लिखी गईं। विज्ञानचिन्तामणिः पत्रिका ने बंगभंग पर क्षोभ व्यक्त किया। (विचि. 6.10.1910) शिवकुमार शास्त्री जैसे पारम्परिक पण्डित अंग्रेजों के विरोध में खुल कर सामने आ गये।[1]

यह सत्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अंग्रेजशासकों की प्रशस्ति में भी रचनाएँ लिखने की प्रवृत्ति बनी रही। इस क्रम में *जुबिलिगानम्* (1807 ई.) *चक्रवर्तिविक्टोरियाविजयपत्रम्* (1889 ई.) आङ्ग्लाधिराजस्वागतम् *एडवर्डमहोदयस्याभिनन्दनम्, विक्टोरियाचरितसंग्रहः* (1887 ई.) *विक्टोरियाप्रशस्तिः* (1892 ई.) *राजपुत्रागमनम्* (1890 ई.) आदि रचनाएँ सामने आईं। सुरेन्द्रमोहन टैगोर ने *प्रिंसपञ्चाशत्* तथा *विक्टोरियामाहात्म्यम्* (1898 ई.) की रचना की और कृष्णचन्द्र की *प्रीतिकुसुमाञ्जलिः* (1897 ई.) तथा सम्पत्कुमारनरसिंहाचार्य की *विक्टोरियावैभवम्* (1899 ई.) आदि कविताएँ भी इस काल में प्रकाशित हुईं।

इनमें से अन्तिम रचना को कवि ने संस्कृतचन्द्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा था, सम्पादक अप्पा शास्त्री पक्के राष्ट्रवादी थे। उन्हें कवि की यह प्रशस्तिपरकता अच्छी न लगी और उन्होंने इस कविता को बहुत दिनों तक रोक कर रखा। अन्त में कवि के बारबार आग्रह करने पर उन्होंने पत्रिका (7-18) में उसे प्रकाशित तो किया, पर उसके साथ विदेशी शासकों की चाटुकारिता में काव्यरचना करने वाले कवियों का अधिक्षेप भी इसी कविता के अन्त में सम्पादकीय टिप्पणी के रूप में प्रकाशित किया। विक्टोरिया के घोषणापत्र का अप्पा शास्त्री ने संस्कृतचन्द्रिका के सम्पादकीय में स्वागत किया गया था, यह समय तथा राजनीति की माँग थी। परन्तु शीघ्र ही वे ब्रिटिशशासन की दुरंगी नीति को समझ गये।

यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि अंग्रेज शासकों के लिए प्रशस्ति के रूप में लिखी गयी रचनाओं में भी परोक्षरूप से राष्ट्र के गौरव तथा उसके भौगोलिक स्वरूप को लेकर संस्कृतकवि सचेत था। *विक्टोरियाष्टकम्* नामक रचना में भारतीय वसुन्धरा की सुषमा तथा भारतजननी का भी गुणगान कवि ने साथ में किया है-

उत्तुङ्गो हिमधरो भवति यत् सीमा ह्युदीच्यां दिशि
नीलाम्बुः परिशोभते च सततं सव्येऽपसव्येऽथवा।

[1] वही, पृ. 124

सेयं भारतभूः सुशीतसलिला शस्यैः फलैः श्यामला
मातस्तेऽभयदे पदे प्रकुरुते सानन्दसेवाञ्जलिम्।।

धीरे धीरे संस्कृत कवि की समाज चेतना प्रखर होती है, और वह अंग्रेजों के शोषणतन्त्र को पहचान कर अपनी कविताओं में उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का संस्कृत गीतिकाव्य वस्तुतः राष्ट्रीयचेतना और जनजागृति का काव्य है। *संस्कृतचन्द्रिका, सूनृतवादिनी, पण्डितः* तथा *विज्ञानचिन्तामणिः* जैसी पत्रिकाओं की संस्कृत काव्य की इस नवीन प्रवृत्ति के संवर्धन में महती भूमिका रही। अन्नदाचरण, अप्पाशास्त्री आदि कवियों के संस्कृत काव्य में इस काल में स्वतन्त्रता की भावना का सुस्पष्ट प्रतिफलन हुआ।

संस्कृत चन्द्रिका के इस काल के सम्पादकीयों का अध्ययन किया जाये, तो उनमें आग भरी हुई लगती है। 2 मई, 1907 ई. के सूनृतवादिनी के सम्पादकीय में क्लाइव को लुटेरा बताते हुए अप्पा शास्त्री कहते हैं-

एतत् खलु स्मारयन्नानाविधानि कपटजालानि यस्यैव दौरात्म्याद्विप्रलब्धः श्रीमानमीचन्द्रो नाम। स एवायं यस्य खलु व्यापारः समपातयत् परातन्त्र्यबन्धने यवनानामपि राज्यानि।

इस सदी के पहले दशक में रचा गया (महायोगी) अरविन्द का संस्कृत काव्य भवानीभारती राष्ट्रीयमनीषा की स्फूर्त अभिव्यक्ति है। बड़ौदा जेल में कवि ने भारतमाता का एक स्वप्नाविष्ट स्थिति में साक्षात्कार करता है। उसके बिखरे बाल पर्वतशिखरों को समेटे हुए हैं। उसकी दृष्टि में सागर प्रसृत हैं, उसके श्वास से नभ विदीर्ण हो जाता है और उसके चरण धरने से धरती डोलती है-

आलोलकेशैः शिरान्निगृह्य करालदंष्ट्रैश्च विसार्य सिन्धून्।
श्वासेन दुद्राव नभो विदीर्णं न्यासेन पादस्य च भूश्चकम्पे।।

यह विकराल देवी भारत माता के रूप में कवि का आह्वान करती है-

मातास्मि भो पुत्रक भारतानां सनातनानां त्रिदशप्रियाणाम्।
शक्तो न यान् पुत्र विधिर्विपक्षः कालोपि नो नाशयितुं यमो वा।।

यह भारत माता उन भारतीयों को फटकारती है जो अपने आप को ब्राह्मण कहते हैं, पर म्लेच्छ अंग्रेजों के चरण चूमते हैं-

म्लेच्छस्य पूतश्चरणामृतेन गर्वं द्विजोऽस्मीति करोति कोयम्।

वह भारतपुत्रों को अग्नि के समान बन जाने के लिए पुकारती है-

उत्तिष्ठ भो जागृहि सर्जयाग्नीन् साक्षाद्धि तेजोऽसि परस्य शौरेः।
वक्षः स्थितनैव सनातनेन शत्रून् हुताशेन दहन्नटस्व।। (18)

99 छन्दों में उपलब्ध यह काव्य स्वतन्त्रतासंग्राम के यज्ञ में एक सार्थक आहुति है। स्वप्नदर्शी कवि भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष के द्वारा समग्र विश्व में

होने वाली उथल पुथल और उसकी परिणति में आने वाले परिवर्तनों को साक्षात् देखता है।

भवानी भारती राष्ट्रीयजागरण की गीता है, एक क्रान्तिकारी का शंखनाद है, ओजस्विता और शक्ति का सन्धान है तथा राष्ट्र के भवितव्य का स्वप्न और देश की अखण्डता का आह्वान भी है। प्रत्येक देशवासी को जागृत और स्फूर्त करना कवि का लक्ष्य है , चाहे वह किसी प्रान्त का हो , किसी भी सम्प्रदाय या धर्म का अनुयायी हो-

भो भो अवन्त्या मगधाश्च बङ्गा कलिङ्गा कुरवश्च सिन्धोः।
भो दाक्षिणात्या शृणुतान्ध्रचौला वसन्ति ये पञ्चनदेषु धीराः।।
ये के त्रिमूर्तिं भजतैकमीशं ये चैकमूर्तिं यवना मदीयाः।
माताह्वये वस्तनयान् हि सर्वान् निद्रां विमुञ्चध्वमये शृणुध्वम्।। (23,24)

यह काव्य संस्कृत भाषा की अपूर्वजीवनी शक्ति का परिचायक भी है। जिसकाल में रवीन्द्रनाथ राष्ट्रीयगीत लिख रहे थे या बंकिमचन्द्र के वन्देमातरम् से भारत गूँज रहा था उसी काल में संस्कृत में एक आर्ष प्रतिभा के धनी कवि ने इस काव्य की रचना आरम्भ की, जिसके स्तर का काव्य उस काल में अन्य किसी भाषा में एकाध अपवाद को छोड़कर कठिनाई से मिलेगा। यद्यपि भवानीभारती में कहीं व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं, क्योंकि मई 1908 ई. में कलकत्ता पुलिस के द्वारा इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि जब्त कर लेने के बाद कवि को इसमें न संस्कार करने का अवसर मिला, न संशोधित करने का। पर अभिव्यक्ति की अबाध गति व परिस्फुटपदावली आर्षकाव्य का प्रत्यय देती है।

संस्कृत के एक अन्य क्रांतिकारी कवि हरिदत्त पालीवाल निर्भय इस काल में अपनी रचनाओं में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आग उगल रहे थे। किशोरावस्था में ही ये सुभाषचन्द्रबोस की सेना में भर्ती हो गये। सशस्त्र क्रान्ति से जुड़ी अनेक गतिविधियों में इनकी अग्रणी भूमिका थी- फर्रूखाबाद बैंक षड्यन्त्र, अलीगढ़ बम विस्फोट आदि कई योजनाओं का इन्होंने नेतृत्व किया। इसके साथ ही अंग्रेजों के अत्याचार और भारतीय जनता की दीनदशा का अनुभव करते हुए उस काल में अग्निगर्भगीतों की रचना भी ये करते रहे। अकालपीड़ित देश की भयावह दशा का चित्र खींचते हुए इन दिनों इन्होंने लिखा-

एकं तन्मृतनग्नाङ्गं निष्प्रच्छदमातपशीतम्
योरपगृध्राणामेककवलमहहा रक्तच्युतिदिग्धम्।
एकं प्रेतवनं तद् ,यत्र न कश्चिच्छोकालापी
एको भ्राम्यन्नात्मा, यस्य न गेहः कोपि क्वापि।। शंखनादः,पृ-180

(सारा देश नंगा आदमी बन गया है, जो धूप और शीत में बिना ओढ़नी के खड़ा है। उसकी देह से रक्त बह रहा है। योरोप के गीधों का वह कौर हो गया है। वह एक श्मशान है जहाँ कोई रोने वाला नहीं है। वह एक भटकती आत्मा है, जिसका कोई घर नहीं।)

क्रान्ति के सैनिकों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा-

अटलक्रान्तेर्गायत गीतं प्रलयताण्डवं मण्डयत।
शान्तं गगनं विक्षोभयत द्विषतां हृदयं कम्पयत।
स्वतन्त्रतासम्मदमत्ता बलिवेदीवर्त्माध्वन्या रे।
कथं न बिभियाद् वोऽरिजनः शिरसा धृतमृतिशीर्षण्या रे।
अद्य निराशायामाशायाः पुनरपि कुरुत सञ्चारम्।
बन्दिनो, भङ्क्त कारागारम्।। (वही)

इसप्रकार की कविताओं में उस समय के नारे, राष्ट्रचेतना से जुड़ी पदावली व मुहावरे स्वतःसंस्कृतीकृत होते हुए संगृहीत हो गये हैं। ऊपर के उद्धरण में कफन के लिए मृतिशीर्षण्य शब्द बनाया गया है, जो खप जाता है। क्रान्तिकारी आन्दोलन में कार्यरत रहते हुए निर्भय जी को वर्षों तक जेलयात्राएँ भी करनी पड़ीं। फरूखाबाद के केन्द्रीय कारागार में इनको मैथिलीशरणगुप्त, आचार्यनरेन्द्रदेव, सम्पूर्णानन्द, स्वामीसत्यदेव आदि विभूतियों का सान्निध्य मिला। गान्धीजी की अहिंसक नीति से ये सहमत न थे और स्वातन्त्र्य प्राप्तितक निरन्तर क्रान्तिकारियों का साथ देते रहे। क्रान्ति की भावना की अभिव्यक्ति तथा करो या मरो के भाव का शङ्खघोष इनकी कविता में तेजस्वी रूप में गुञ्जित है-

यद्यस्ति जीवितव्यं क्राम्याम देहलीं तत्
यद्यस्ति वर्तितव्यं क्राम्याम देहलीं तत्।
यद्यस्ति कर्म कार्यं क्राम्याम देहलीं तत्
यद्यस्ति लभ्यमन्नं क्राम्याम देहलीं तत्।। (1940 में प्रकाशित देवभाषा संङ्कलन से)

दूसरी ओर गाँधी जी के असहयोग तथा सत्यग्रह आंदोलन का गहरा प्रभाव संस्कृत रचनाकारों पर पड़ा। इस दिशा में साहित्य के संसार में सर्वथा नई धरती तैयार करने का श्रेय पंडिता क्षमादेवी राव को जाती है, जिनके अवदान पर आगे के अध्यायों में विस्तार से चर्चा की जायेगी। पर 1931 में सत्याग्रहगीता लिख कर कवि क्षमादेवी राव ने संस्कृत में एक नये युग का सूत्रपात कर दिया था। उनका अनुसरण करते हुए संस्कृत के अनेक कवियों ने गाँधी जी के जीवन तथा असहयोग आंदोलन को अपने काव्य का विषय बनाया। प्रो. राजहंस ने गान्धीगीता अथवा अहिंसायोगः नामक काव्य की रचना की। इस काव्य में संपूर्ण गाँधीदर्शन का प्रतिपादन है।

श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने (1974-1888)भारतरत्नमाला पुस्तक शृंखला प्रस्तुत की । वी.एल. शास्त्री के महात्मविजयः नामक काव्य में गाँधी जी के सत्याग्रह आंदोलन तथा जीवनदर्शन का प्रतिपादन है। व्रजानंद का गान्धीचरित शतककाव्य है। इसमें उनकी अफ्रीकायात्रा तथा स्वाधीनतासंग्राम के श्रीगणेश का वर्णन है। गाँधीजी के चरित्र पर लिखे गये अन्य काव्य हैं- *महात्मा* (व्ही. राघवन्), *गान्धीगीता* (अनन्तविष्णु काणे), *गान्धीशतश्लोकी* (गणपति शङ्कर शुक्ल), *गान्धीमाहात्म्य* (विजयाराघवाचार्य), *गान्धीचरितम्* (चारुदेवशास्त्री 1939 ई.), *मोहनपञ्चाध्यायी* (1931 ई.), *मोहनगीता* (सुरेन्द्र सेवी, 1945 ई.), *गान्धीप्रवहणम्* (महाभिक्षु), *वर्णव्यवस्था* (दीपचन्द्राचार्य, 1933 ई.) *गान्धीनिर्वाणकाव्यम्* (शम्भु शर्मा) आदि।

सत्याग्रहनीतिकाव्यम् (1939 ई.) काव्य की रचना श्री सत्यदेव वशिष्ठ ने हैदराबाद के जेल में रहकर की। काव्यरचना का प्रयोजन बताता हुआ कवि कहता है-

काव्यनिर्माणचातुर्यं कवीनां धर्म उच्यते।

यह एक अर्थ में प्राचीन काव्य की शिल्प परकता काव्यनिर्माण चातुरी का विरोध है। काव्य देश और जाति के उद्धार के लिए प्रवृत्त नहीं तो इस चातुरी से क्या लाभ?

राष्ट्रचिन्तन को रचना की अनिवार्य प्रेरणा मानना संस्कृत कविता के क्षेत्र में नूतन प्रतिमान का आधान है। वाशिष्ठ जी कविता से शब्दजाल को भी दूर करने का संकल्प व्यक्त करते हैं-

शब्दजालमपाकृत्य साधुशब्दविभूषितम्।
कृतं काव्यं प्रसादाय नहि क्लेशाय चेतसः।।
सत्याग्रहज्ञानजुषो नरा ये तच्छ्यावने नालमिहास्ति लक्ष्मीः।
नूनं दवाग्नेः शमने समर्थो वायुः कदाचिन्न समृद्धवेगः।।

इस सारी पृष्ठभूमि में यह स्वाभाविक था कि संस्कृत जगत् में उन्नीसवीं शती में प्रगतिशील पंडितों का सबल खेमा उभरता। बंगाल में राजाराममोहन राय तथा ईश्वरचन्द्रविद्यासागर ने इस खेमे की अगुआई की। 1854 ई. ईश्वरचन्द्रविद्यासागर ने विधवाविवाह पर संस्कृत में एक पुस्तिका प्रकाशित कराई और उसका व्यापक प्रसार कराया। पुस्तिका का पहला संस्करण एक सप्ताह में बिक गया था। एक लम्बी बहस का विद्यासागर जी के इस उपक्रम से आरम्भ हुआ। इसकाल की संस्कृत पत्रपत्रिकाओं में विधवाविवाह तथा बालविवाह के पक्ष और विपक्ष में ढेरों लेख छपे। रचनात्मक साहित्य भी इस सब से अछूता न रहा। रामनारायण तर्करत्न ने *कुलीनकुलसर्वस्वम्* (1854) नामक नाटक में कुलरमणियों की दुर्दशा का

चित्रण किया। श्यामाचरण ने बालविवाह पर *बालोद्वाहः* (1860) नामक नाटक लिखा। विहारीलाल नन्दी ने *विधवापरिणयोत्सवः* (1857) की रचना कर विधवाविवाह को उत्सव बना दिया ।

इस दृष्टि से म.प्र. लक्ष्मण शास्त्री तैलंग की कविता *उपशल्यशंसनम्* (1935) को आधुनिक संस्कृत साहित्य में एक प्रवर्तक कृति कहा जा सकता है। यह कविता अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य का बन्ध लिये हुए है। संस्कृतकविता में पहली बार ग्राम जीवन के यथार्थ को बदले हुए स्वर में यहाँ अभिव्यक्ति मिली है। पसीने में लथपथ परिश्रमनिरत किसानों की कष्टगाथा कवि की वाणी में मुखरित हुई है।

गद्य के क्षेत्र में इस सदी के आरम्भ में ही अम्बिकादत्त व्यास की महान् रचना शिवराजविजयम् से संस्कृत उपन्यास का गौरवशाली अवतार हुआ। शताब्दी के पहले दशक में अनेक उपन्यास लिखे गये पर उनमें अधिकांश की विषयवस्तु पौराणिक थी। म.म.भट्टमथुरानाथ शास्त्री ने सामाजिक विषयवस्तु पर आदर्शरमणी (1905) उपन्यास का प्रणयन कर के संस्कृत उपन्यास को नया मोड़ दिया। इसी समय भट्टरमानाथ शास्त्री का इसी लीक पर रचा हुआ *दुःखिनी बाला* (1905) उपन्यास सामने आया। नारी की ही वेदना का करुण चित्रण *वियोगिनी बाला* (1906) में बलभद्र शर्मा ने प्रस्तुत किया। इसी क्रम में बनवारी लाल पाठक ने 1906 से 1909 के बीच छपे आठ और उपन्यासों की चर्चा की है, जो सामाजिक विषय और नारी जीवन से ही सम्बद्ध हैं। ऐतिहासिक उपन्यास भी इस अवधि में बराबर लिखे जाते रहे। पाठक जी के अनुसार दूसरे दशक से सामाजिक उपन्यासों के प्रति रुझान बढ़ता दिखता है। इस दशक के लगभग पन्द्रह उपन्यासों का पाठक के लेख में उल्लेख है। इन सभी में लेखकों ने गल्प तथा रुमान का आश्रय अधिक लिया है। तीसरे दशक के सात उपन्यासों का उल्लेख इस लेख में है। इनमें नारायण शास्त्री ख्रिस्ते के *दरिद्राणां हृदयम्* का स्वर थोड़ा अलग है, शेष सामाजिक या ऐतिहासिक विषयवस्तु के रोमांटिकचित्रण में पर्यवसित हैं। चौथे दशक के उपन्यासों में ऐतिहासिक विषयवस्तु को सामाजिक दृष्टि से परिवर्तित करके प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। इस दशक के छह उपन्यास लेख में विवेचित हैं। पाँचवें दशक के उल्लिखित पाँच उपन्यासों में चार ऐतिहासिक विषय वस्तु पर आधारित हैं। केवल गंग उपाध्याय का सीमासमस्या उपन्यास समस्याप्रधान कृति है। छठे दशक के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण व पात्रों के भीतर के संसार के निरूपण की प्रवृत्ति का उदय होता है। हरिदास सिद्धान्त वागीश का *सरला* उपन्यास (1953) शरच्चन्द्र की भावुकता ,नारी के सुकुमार संसार और विधवा की व्यथा का चित्रण लेकर प्रस्तुत होता है। भागीरथी प्रसाद शास्त्री वागीश का मंगलमयूख आधुनिक उपन्यास कला का

स्वरूप प्रस्तुत करता है। 1960 ई. में प्रकाशित कलानाथ शास्त्री का उपन्यास *जीवनस्य पृष्ठद्वयम्* आज के यथार्थ का यथातथ उद्घाटन है। सातवें, आठवें और नवें दशक के उपन्यासों में विषय वैविध्य तथा कलात्मक समृद्धि अधिक दिखाई देती है। *कुसुमलक्ष्मीः* और *द्वा सुपर्णा* सातवें दशक में, आठवें दशक में कृष्णकुमार का उदयनचरितम् तथा नवें दशक में केशवचन्द्र के उपन्यास उल्लेख्य रचनाएँ हैं। ऐतिहासिक विषयवस्तु का प्रामाणिक अनुसन्धान पूर्वक निरूपण तथा पात्रों के मनोविज्ञान की उद्घाटन श्रीनाथ हसूरकर के उपन्यासों की विशेषताएँ हैं।

अप्पाशास्त्र राशिवडेकर (1873-1913) ने *संस्कृतचन्द्रिका* पत्रिका व *सूनृतवादिनी* अखबार के सम्पादन तथा प्रकाशन के द्वारा संस्कृत में वही कार्य किया जो महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी में सरस्वती व तिलक ने मराठी में केसरी के सम्पादन के द्वारा किया। समर्पित तपःपूत पत्रकारिता के अतिरिक्त उन्होंने स्वयं विविध विधाओं में विपुल लेखन संस्कृत में किया। समसामयिक भारतीय साहित्य की रचनाओं के संस्कृत अनुवाद किये। बहुसंख्यक मुक्तक काव्य या खण्डकाव्य तथा प्रतीकात्मकनाटक अधर्मविपाकम् के अतिरिक्त अप्पाशास्त्री ने संस्कृत गद्य को युगानुरूप सरल प्रांजल स्वरूप देते हुए अनेक कहानियों और निबन्धों की रचना की। अप्पाशास्त्री के गद्य में अद्‌भुत ऊर्जा और प्राणवत्ता है। राजनीतिक संकट और स्वातन्त्र्य संघर्ष के काल में जिस दीप्त गद्य की आवश्यकता अमरवाणी को थी, वह अप्पाशास्त्री ने दिया। उनकी कविताओं में कल्पना और संवेदना की न तो नवीनता है, न गहराई। पर संस्कृत कविता उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में जिस युगसत्य को व्यंजित कर रही हैं उसके ये नमूने हैं। इस दृष्टि से उनकी कविता *पञ्जरबद्धः शुकः* स्मरणीय है। इसमें पंजरबद्ध शुक की अन्योक्ति के माध्यम से पराधीन भारत की वेदना को कवि ने व्यक्त किया है। इस कविता से प्रभावित होकर हिन्दी कवि मैथिलीशरणगुप्त ने इसका संस्कृत से हिन्दी में काव्यानुवाद किया था, जो उस समय सरस्वती जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका में (अगस्त 1911) प्रकाशित हुआ था।

हरिदाससिद्धान्त वागीश (1876-1961) महान् आचार्य मधुसूदन सरस्वती के वंशज थे। इन्होंने जीवानन्द विद्यासागर से साहित्यशास्त्र का अध्ययन किया तथा किशोरावस्था से ही संस्कृत में विविध विधाओं में काव्यों की रचना आरम्भ की। 15 वर्ष की आयु में इन्होंने कंसवध नाटक पूरा किया और 18 वर्ष की आयु में जानकीविक्रम नाटक। इन्हीं दिनों शङ्करसम्भव तथा वियोगवैभव खण्डकाव्यों की भी रचना इन्होंने की। *विराजसरोजिनी, मिवारप्रतापम्, बङ्गीयप्रतापम्* तथा *शिवाजीचरितम्* ये चार इनके प्रसिद्ध नाटक हैं और *रुक्मिणीहरणम्* महाकाव्य भी इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है।

पारिवारिक सामाजिक विषयवस्तु को लेकर *सरला* नामक लघु उपन्यास इन्होंने लिखा। *विद्यावित्तविवादः* खण्डकाव्य के अतिरिक्त *स्मृतिचिन्तामणि, काव्यकौमुदी* और *वैदिकविवादमीमांसा* – ये शास्त्रीय ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे। बंगला में भी इन्होंने कुछ पुस्तकें लिखीं। हरिदास जीनकपुर नरेश के टोल में प्राध्यापक रहे। इनके नाटकों में हिन्दुत्व का जातीय अभिमान और राष्ट्रीय पुनरुत्थान का प्रबल भाव है। रंगमंच की दृष्टि से इनके नाटक सफल हैं और उपर्युक्त सभी चार नाटक कई कई बार खेले गये। युगानुरूप सरल और ओजस्वी गद्यविन्यास तथा भाषा के प्रवाह के कारण हरिदास जी की रचनाओं में सुपाठ्यता है।

1877ई. बिहार के छपरा जिले में जन्मे महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा इस शताब्दी के सर्वोच्च संस्कृत पण्डितों में गिने जाते हैं। पारम्परिक संस्कृतशिक्षा घर पर अपने पिता से ग्रहण कर इन्होंने गंगाधर शास्त्री जैसे अपने समय के श्रेष्ठ पण्डित से साहित्य का अध्ययन किया। पटना, कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में इन्होंने अध्यापन किया। 1929 ई. में इनका निधन हुआ। किशोरावस्था में ही इन्होंने धीरनैषध जैसा प्रौढपूर्ण नाटक संस्कृत में लिख दिया था। मेघदूत की पैरोडी पर मुद्गरदूतम् जैसी रचना लिख कर ये संस्कृत की नयी कविता के अग्रदूत बने। इस रचना की चर्चा इस ग्रन्थ में अन्यत्र की गयी है। *भारतीयमितिवृत्तम्* नाम से इन्होंने पद्यों में भारत का समग्र इतिहास रचा, *वाङ्मयार्णवः* नाम से नया विश्वकोश संस्कृत में लिखने का उपक्रम किया और *परमार्थदर्शनम्* नाम से प्रौढ दार्शनिक ग्रन्थ सूत्र, कारिका और भाष्य की शैली में लिखा, जिसे कपिल,कणाद,गौतम आदि की परम्परा में सप्तम दर्शन के रूप में मान्यता मिली।

शर्माजी ने नये युग के अनुरूप संस्कृत में नये गद्य की अवतारणा की । गद्य में लिखे गये उनके निबन्धों में व्यक्तित्व का तेजस्वी और रूढिभंजक रूप अभिव्यक्त है। *भारतीयमितिवृत्तम्* के उपोद्घात में उन्होंने अपनी इतिहासदृष्टि को स्पष्ट किया है-

प्राचीनेभ्यो निबन्धेभ्यो नवीनेभ्यश्च यत्नतः।
सङ्गृह्य भारतस्येतिवृत्तं संक्षिप्तमुच्यते।।

विविध शैलियों का प्रयोग इन्होंने किया। कहीं दीर्घसमासों के साथ जटिल पदावली और गौड़ी रीति का विन्यास है,तो कहीं अत्यन्त प्रासादिक सहज और सरल भाषा वैदर्भी रीति में विन्यस्त है। रामावतार शर्मा की *भारतगीतिका* शीर्षक रचना नये युग के अनुरूप भारतीयों को प्रबोधित करती है।

भट्टमथुरानाथ शास्त्री (1889) एक युगप्रवर्तक साहित्यकार हैं। संस्कृत रचना में नई प्रवृत्तियों के आधान, नई विधाओं के सूत्रपात तथा नई शैलियों

के प्रयोगों की दृष्टि से उनकी कृतित्व बहुत सम्पन्न है। संस्कृत में रेडियोरूपक, आधुनिक वातावरण तथा नये सामाजिक सन्दर्भों का चित्रण करने वाली कहानियाँ, यात्रावृत्त , ललितनिबन्ध जैसी विधाओं की अवतारणा शास्त्री जी ने ही की। दोहा, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय कवित्त जैसे ब्रजभाषा के छन्दों को पहली बार संस्कृत काव्य में इन्होंने उतारा। संस्कृत गजल के भी प्रवर्तक शास्त्रीजी ही कहे जा सकते हैं। गजल के विधान तथा लोकभाषा के छन्दों पर उनका असाधारण अधिकार है। उनके ललित निबन्धों में लेखनी का चुलबुलापन चमत्कारी है तो कहानियों में व्यंग्य, विडम्बना, सामाजिक वैषम्य की अभिव्यक्ति भी उतनी ही प्रभावशाली है। अप्रयुक्त छन्दों में लिखते हुए शास्त्री जी ने कहीं आयास का अपनी रचना में अनुभव नहीं होने दिया है।

इस पृष्ठभूमि में पण्डिता क्षमाराव (1890-1953) की साहित्य साधना ने संस्कृत साहित्य में नवोन्मेष के अनुद्घाटित द्वार खोले। वे अपने समय से आगे थीं, व समकालीन अनेक वरिष्ठ कवियों से उनके साहित्य की परिधि विशालतर थी। अंग्रेजी साहित्य तथा आधुनिक जीवन और आधुनिक विधाओं से उनके सम्पर्क ने भी उनके रचनासंसार को अन्य संस्कृत कवियों से भिन्न आयाम दिये।

क्षमा देवी राव के कनिष्ठ समकालीनों में डा. वेंकट राघवन् (1908-1979) का नाम उल्लेखनीय है। राघवन् बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे तथा इनका कर्त्तृत्व अनेक संस्थाओं और क्षेत्रों में विस्तीर्ण रहा। समकालिक संस्कृत साहित्य को इन्होंने खण्डकाव्य, महाकाव्य, नाटक, निबन्ध, सुभाषित आदि विविध विधाओं में विपुल सर्जन कर के सम्पन्न बनाया। संगीत और नाटक के क्षेत्र में भी उल्लेख्य कार्य किया।

क्षमा राव ने जिस काल में संस्कृत में रचनाएँ कीं, वह आधुनिकसंस्कृतसाहित्य का समृद्धकाल था। उनके समकालीनों में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, हरिदास सिद्धांत वागीश, क्षितीशचंद्र, अन्नदाचरण, व्ही. राघवन् आदि साहित्यकार संस्कत को नई रचनाओं से संपन्नतर बनाने का प्रयास कर रहे थे। पर क्षमा राव ने इन पंडितसाहित्यकारों की रचनाओं का कदाचित् अध्ययन भी नहीं किया, उनसे प्रभावित होने की तो बात ही दूर रही। संस्कृत के युगप्रवर्तक साहित्यकार अप्पा शास्त्री महाराष्ट्र में रह कर ही संस्कृतचंद्रिका तथा सूनृतवादिनी जैसी पत्रिकाएँ व अखबार निकाल रहे थे। संभवतः संस्कृतचंद्रिका तथा अप्पाशास्त्री से क्षमा राव का संपर्क रहा हो। तथापि जैसा हम आगे के अध्यायों में देखेंगें, क्षमा राव ने कालिदास आदि संस्कृत के महाकवियों तथा योरोप के श्रेष्ठ साहित्यकारों की रचनाओं को हृदयंगम करते हुए संस्कृत में नये साहित्य की रचना का अपना पथ स्वयं निर्मित किया।

अध्याय 2
पंडिता क्षमादेवी राव -- जीवन तथा कृतियाँ

पंडिता क्षमा राव ने अपने पिता की स्वरचित जीवनी *शङ्करजीवनाख्यानम्* में अपने पूर्वजों व परिवार के विषय में जानकारी दी है। तदनुसार उनके परिवार का संबंध कोंकण प्रदेश से था, जो वर्तमान महाराष्ट्र में अरब सागर और पश्चिमी घाट की सुरम्य शृंखलाओं के मध्य में स्थित है। इसी प्रदेश में सावंतवाड़ी जिले के अंतर्गत बांबोली नामक गाँव में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक ब्राह्मण परिवार में नारायण और पांडुरंग नाम के दो भाई रहते थे। दोनों पंडित के रूप में गाँव में जाने जाते थे। परिवार संपन्न नहीं था। अभाव और निर्धनता इन भाइयों को बपौती में मिले थे। खेती व निरक्षर ग्रामवासियों के लिये चिट्ठियाँ लिखना उनकी जीविका के साधन थे। नारायण की पत्नी भी विप्रकुल में जन्मी थी, पर उनके पिता योद्धा थे, व युद्ध में खेत हुए। नारायण के आठ पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हुईं, जबकि छोटे भाई पांडुरंग निस्संतान थे, और वे अल्प आयु में ही कालकवलित हो गये। नारायण की संतानें आये दिन बीमार होती रहतीं, परिवार पर भी कोई न कोई संकट बना रहता। इस के निवारण के लिये उन्होंने एक बेटे शंकर को भाई पांडुरंग के लिये अर्पित करते हुए अनुजवधू को दे दिया। दत्तक पुत्र के रूप में शंकर अपना पूरा नाम शंकर पांडुरंग पंडित लिखते रहे।

शंकर का जन्म 1840ई. में हुआ था। नारायण पंडित की सभी संतानों में वे अत्यंत मेधावी थे, व उनके अन्य बेटी-बेटे उनके समान यशोभाजन नहीं हो सके। ग्यारह वर्ष की आयु में पिता ने शंकर का दुर्गा नामक ब्राह्मण कन्या से उनका विवाह तय कर दिया। शंकर विवाह के लिये तैयार न थे, और वे ऐन मौके पर जंगल में जा छिपे।[1] किसी तरह उन्हें खोज कर लाया गया और जबरजस्ती विवाह भी कर दिया गया। अपने *रामदासचरितम्* महाकाव्य में समर्थ स्वामी रामदास के किशोरावस्था में विवाहमंडप से भाग जाने की घटना के चित्रण में संभवतः पिता के जीवन के इसी प्रसंग को कवि क्षमा ने पुनर्विन्यस्त किया है।

---

[1] शङ्करजीवनाख्यानम् 1.20-21

पहली पत्नी दुर्गा से शंकर को एक बेटी हुई जिसका नाम कृष्णा रखा गया। बेटी कृष्णा तीन वर्ष की भी नहीं हुई थी कि पत्नी दुर्गा का निधन हो गया। शंकर किसी विधवा से विवाह करना चाहते थे, पर सोलापुरनिवासी रामचंद्र नायक की बेटी उषा से विवाह हुआ। उषा की आयु उस समय तेरह वर्ष की थी। यही उषा क्षमा देवी की माता बनी। क्षमा का जन्म 4 जुलाई 1890 को पूना में हुआ।[1] क्षमा देवी के दो बहनें और चार भाई थे।

क्षमा तीन वर्ष की हुई ही थीं कि 1894 में पिता शंकर का देहावसान हो गया। परिवार पर यह वज्रपात था। चाचा सीताराम तब तक राजकोट में बैरिस्टर हो चुके थे, और उनकी वकालत अच्छी चल रही थी। बड़े भाई का दाय स्वीकार करतेहुए वे उनके परिवार को अपने साथ राजकोट ले आये, क्षमा पर उनका बहुत स्नेह था, पर क्षमा की चाची ने अपने जेठ के परिवार को सहजता से स्वीकार नहीं किया, क्षमा और उसकी दो बहनों तथा चार भाइयों के प्रति वे असहिष्णु और निर्मम ही बनी रहीं। सीताराम पंडित भी इस परिवार पर अपनी कमाई का पैसा खर्च करने में हाथ खींचने लगे। अंततः क्षमा की माँ उषादेवी को अपने पति के द्वारा छोड़ी गई बहुत थोड़ी सी संपत्ति के सहारे अपनी संतानों का भरणपोषण करने पर विवश होना पड़ा। धनाभाव के कारण वे अपनी किसी भी बेटी को स्कूल न भेज सकीं।

क्षमा मेधाविनी थीं, उन में अध्ययन के लिये ललक भी थी। विद्यालय न भेजे जाने पर भी वे और उनकी बहन तारा भाइयों के पाठ सुन सुन कर याद कर लेतीं। भाई बाहर जाते तो दोनों उनकी पुस्तकें पढ़ती रहतीं। इसी समय क्षमा को नियति ने दूसरा गहरा आघात दिया। बहन तारा बारह वर्ष की आयु में उन्हें सदा के लिये छोड़ कर परलोक सिधार गई।

क्षमा ने सौराष्ट्र में रहते हुए अपने स्वाध्याय के बल पर मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। अंग्रेजी में उत्तम अंक पाने की वजह से उन्हें पारितोषिक मिला। इसके बाद वे अपने पितामह रामचंद्र नायक के घर बंबई आ गईं। घर गंदी बस्ती में था। क्षमा ने यहाँ रह कर अभावग्रस्त भारतीय जीवन ही नहीं, मध्यम और निम्न वर्ग के लोगों के विकट संघर्ष को भी निकटता से देखा। संस्कृत में लिखी उनकी कहानियों पर इस जीवन के अनुभवों की छाया देखी जा सकती है।

बंबई के प्रख्यात विल्सन महाविद्यालय में इंटरमीडियट आर्ट्स में उन्हें दाखिला मिल गया। इसी महाविद्यालय में महामहोपाध्याय पुरुषोत्तम वामन काणे भी प्राध्यापक थे, जो बाद में *हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स* तथा *हिस्ट्री*

[1] श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने भी अपने संस्कृतवाङ्मयकोश में क्षमा राव की जन्मतिथि 4.7.1890 ही बताई है।

आफ धर्मशास्त्र जैसे अपने विश्वकोशात्मक ग्रंथों के लिये विश्वविख्यात हुए व साहित्य अकादेमी पुरस्कार से विभूषित किये गये। देश के स्वतंत्र होने पर अपने संस्कृत वैदुष्य के लिये महामहोपाध्याय काणे को प्रथम भारतरत्न का अलंकरण भी प्रदान किया गया। काणे जी विल्सन महाविद्यालय में प्रथम वर्ष की कक्षा में भी संस्कृत विषय में व्याख्यान देने के लिये आते थे, जिसमें क्षमा भी उनकी छात्रा थी। उन्होंने दो वर्ष ही विल्सन महाविद्यालय में कार्य किया, पर इस महाविद्यालयमें अपनी असाधारण छात्रा क्षमा देवी को वे सदा याद करते रहे। उनके बारे में काणे जी ने लिखा है कि वे बहुत ही सुंदर और अध्ययनशील छात्रा थीं।[1]

एक ओर बंबई में अभावग्रस्त मध्यवर्गीय जीवन दूसरी ओर विल्सन कालेज में अत्याधुनिक वातावरण। कालेज में संभवत क्षमा देवी ही एकमात्र भारतीय मूल की छात्रा थीं, अधिकांश छात्र छात्राएँ पारसी या एंग्लो इंडियन थे।

बी.ए. पूरा भी नहीं हुआ था कि क्षमा का विवाह कुलीन सारस्वत ब्राह्मण राघवेंद्र राव के साथ हो गया। विवाह की तिथि के बारे में शोधकर्ताओं में मतभेद हैं। कृष्णकांता शर्मा के अनुसार यह विवाह 1906 में हुआ, जब क्षमा देवी की आयु मात्र 16 वर्ष की थी। दूसरी ओर पी.वी. काणे विवाह के समय क्षमा की आयु लगभग बीस वर्ष बताते हैं। संभवतः काणे महोदय ने स्मृति के आधार पर उल्लेख किया है, और वे ग़लत हैं। पति राघवेंद्र राव की आयु इस समय चालीस वर्ष थी – वे क्षमा से आयु में कम से कम दो गुने बड़े थे।

राघवेंद्र लंदन से एम.डी. तथा डी.एस.सी करने वाले पहले भारतीय थे। वे बहुत दयालु और उदार व्यक्ति थे, पर चिकित्सक के रूप में उतने ही अधिक व्यस्त भी रहते थे, बंबई के बाहर भी उन्हें आना जाना पड़ता। क्षमा राव का औपचारिक अध्ययन छूट गया था, पढ़ाई पूरी न होने पाने की कचोट उनके मन में बनी रही। पति अपनी सदाशयता के कारण उनकी साहित्यिक व सांस्कृतिक अभिरुचि की तृप्ति के लिये यथासंभव सहायता करते। अपनी पत्नी को देने के लिये अपने बहुमूल्य समय को छोड़ कर उनके पास सब कुछ था। उनकी मासिक आय इस समय दस से बीस हजार रुपया प्रतिमाह थी। बंबई फोर्ट के क्षेत्र में उनका शानदार बंगला था, जिसमें रमणीय बगीचा भी था। क्षमा के विपन्नता के दिन बीत गये थे, पति के घर में अटूट ऐश्वर्य था, दो घोड़ों वाली बग्घी उनकी सेवा में सदा लगी रहती, नौकर-चाकरों की भी कमी न थी। उन्होंने ससुराल में ही स्वाध्याय करते हुए मराठी के साथ

[1] पंडिता क्षमाराव – एक साहित्यिक मूल्यांकन – (अप्रकाशित शोधप्रबंध). पृ. 5

संस्कृत, अंग्रेजी जर्मन, फ्रैंच, इटालियन, गुजराती आदि भाषाओं का स्वाध्याय जारी रखा। दस वर्ष की अवस्था से ही वे संस्कृत तथा अंग्रेजी में कविताएँ लिखने लग गईं थीं। अब लेखन के लिये उनके पास अधिक सुविधा और अनुकूल समय था। वे टेनिस की अच्छी खिलाड़ी थीं, पति की मृत्यु (1953ई.) तक वे नियमित रूप से टेनिस खेलती रहीं। अपनी बेटी लीला को भी टेनिस खेलना उन्होंने सिखाया। माँ और बेटी दोनों टेनिस के टूर्नामेंट्स में खेलने देश में ही नहीं, फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड जैसे देशों में भी गईं थीं, और दोनों ने कई महिला युगल चैंपियनशिप्स जीतीं थीं। पियानो वादन में क्षमादेवी निपुण हो गईं। घुड़सवारी का भी उन्होंने अच्छा अभ्यास किया।

इस सारे वैभव के बीच क्षमा राव की साहित्यपिपासा व साहित्यरचना की इच्छा तृप्त नहीं हो पा रही थी। उनके पति राघवेंद्र राव अत्यंत व्यस्त रहते थे, व उनमें साहित्य की ऐसी अभिरुचि भी न थी। घर में अंग्रेजीदाँ वातावरण था। क्षमा राव ने इस वातावरण में अंग्रेजी में नाटक, कहानियाँ तथा कविताएँ लिखना आरंभ किया। उनके साहित्यिक जीवन का यह एक चरण है, जो 1920 से 1030 तक दस वर्षों की अवधि में फैला हुआ है। इस अवधि में उनकी अंग्रेजी रचनाएँ *इलस्ट्रेड वीकली* आदि विभिन्न पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इनमें से कुछ का मराठी में अनुवाद भी हुआ। उनका दि अमूलेट (The Amulet) नामक नाटक रायल आपेरा हाउस में ग्राउट एंडरसन के निर्देशन में खेला गया।[1] उनके अन्य नाटक *दि गेस्ट्स आर वेटिंग, नन्दज सन* और पाँच अन्य एकांकी भी इस अवधि में मंच पर प्रस्तुत हुए।[2] उनकी अंग्रेजी रचनाओं का उल्लेख करते हुए विद्वान् श्री गं. भट्ट ने उन्हें अंग्रेजी साहित्य की दूसरी सरोजिनी नायडू बताया है।[3]

1911 ई. में वे पति के साथ यूरोप-भ्रमण के लिये गईं। उस यात्रा में उनके भीतर स्वाधीनता और आधुनिक बोध और भी परिपक्व हुए। उन्होंने योरोप के सांस्कृतिक वैभव का जायजा लिया, पति के साथ अनेक नाटक व आपेरा देखे। फ्रैंच, जर्मन, इतालियन व अंग्रेजी भाषाओं का भी खूब अभ्यास किया।

यह समय था जब देश पूर्ण स्वराज्य और स्वाधीनता के स्वप्न देख रहा था, गांधी जी दक्षिण अफ्रीका ले लौट आये थे। क्षमा राव के मन में कांग्रेस की गतिविधियों में भाग लेने की प्रबल इच्छा थी। इसके लिये उन्होंने बी.जी.खेर से संपर्क किया। उनके रूप, आभिजात्य और ऐश्वर्यमय जीवन को देखते हुए

---

[1] ग्रामज्योतिः, भूमिका, पृ. 3

[2] वही

[3] ज्ञानेश्वरचरितम् पर श्री गं भट्ट का मराठी में लिखित प्रास्ताविक

उन्हें कठोर दायित्व नहीं सौंपे गये, गंदी बस्तियों में प्रौढ लोगों के बीच साक्षरता के प्रसार के योग्य ही उन्हें समझा गया। कई सभाओं में इन्हें बोलने का मौका अवश्य मिला। इनके भाषण मँजे हुए और स्फूर्तिप्रद होते थे।

इसके बावजूद क्षमा राव स्वाधीनता आंदोलन में किसी न किसी रूप में सक्रिय रहीं। गाँवों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आंदोलन करने वाले देशभक्तों से मिलने के लिये गुजरात के विभिन्न अंचलों में उन्होंने भ्रमण किया। 1926ई. में वे साबरमती आश्रम में गाँधीजी से मिलीं और देशसेवा का कार्य सौंपने का उनसे अनुरोध किया। गाँधी जी ने उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि को देखते हुए उन्हे कोई दायित्व नहीं दिया।[1]

दूसरी और सत्याग्रह गीता में क्षमाराव स्वयं बताती हैं कि उन्हें कांग्रेस की ओर से बोर्सद गाँव के शिविरों में घायल देशसेविकाओं की स्थिति देखने के लिये भेजा गया था। क्षमा राव ने इन शिविरों जा जा कर स्वयंसेविकाओं तथा गाँव की स्त्रियों से बातचीत की। इस यात्रा में कस्तूर बा इनके साथ थीं। उनके इस यात्रा के अनुभव *ग्रामज्योतिः* तथा *कथापञ्चकम्* इन दो कथासंग्रहों में प्रतिफलित हुए हैं।

निरंतर लेखन तथा साहित्यकारों व विद्वानों के साथ संपर्क के साथ क्षमा राव की साहित्यिक यात्रा जारी रही। क्षितीशचंद्र चटर्जी, के.एम. पणिक्कर, हीरानंद शास्त्री, नागप्पा शास्त्री, चारुदेव शास्त्री, व्ही. राघवन्, पी.वी. काणे आदि भारतीय पंडितों तथा सिल्वाँ लेव्ही, ल्यूडर्स आदि विद्वानों से उनका संपर्क रहा।

उन्होंने अपनी संतानों को घुड़सवारी और संगीत का अभ्यास करवाया, टैनिस की भी शिक्षा दी। वे अपने बेटे -बेटियों को यूरोप के संगीतगृहों, कलावीथियों में ले जातीं। भाषा की शिक्षा भी वे उन्हें देतीं। उनकी बेटी लीला तो उनके लिखे अंग्रेजी नाटकों में अभिनय भी करती थी।[2]

क्षमा राव में भारतीयता के संस्कार कूट कूट कर भरे हुए थे, देश से उन्हें अनुराग था, धार्मिक कर्मकांडों में उनकी आस्था न थी, पर वे कृष्णभक्त थीं, व गीता का पाठ नित्य करती थीं। उनकी सारी जीवन यात्रा परंपरा और आधुनिकता की धाराओं का संगम बनी रही। अपने पति राघवेंद्र राव पर उनकी अनाकुल व अनाहत श्रद्धा सदैव बनी रही। 1943 के आसपास उन पर उन्होंने संस्कृत में दो श्लोक रचे थे।

क्षमा राव की संतानों में बेटे मन्मथ ने कानून की शिक्षा प्राप्त की। बेटी लीला का विवाह नेपाल के भूतपूर्व राजदूत श्री हरेश्वर दयाल से हुआ।

---

[1] वही

[2] पंडिता क्षमाराव – एक साहित्यिक मूल्यांकन – (अप्रकाशित शोधप्रबंध). पृ. 9

जीवन में उन्हें अपार दुःख और अपार सुख दोनों मिले। वे एक भरापूरा परिवार छोड़ कर परलोक सिधारीं। उनके नाती दिलीप और रणजित उनके निधन के समय बहुत छोटे थे।

नवंबर 1953 में पति राघवेंद्र राव उन्हें छोड़ कर चल बसे। क्षमा के जीवन का यह सबसे बड़ा आघात था, जिसे वे झेल न सकीं। उनकी संपत्ति पर लोगों की दृष्टि थी, अपने भोले स्वभाव के कारण वे एक दलाल के द्वारा ठगी गईं। इस घटना ने उन्हें तोड़ कर रख दिया। लीला राव दयाल *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* के लिये लिखे अपने प्रकाशकीय में बताती है कि उनकी माँ को 1953 में बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा, जनवरी 1954 में अपने इस महाकाव्य का अंतिम सर्ग लिखते समय वे कोरोनेरी थ्रोंब्रोसिससे ग्रस्त हो गईं। उन्हें अवसाद ने भी आ घेरा। 22 अप्रैल 1954 के दिन भोर में उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ पूरा किया और प्राण त्याग दिये।

क्षमा राव का उनके जीवन काल में यथोचित मूल्यांकन नहीं हुआ, न उन्हें अपेक्षित सम्मान दिया गया। एम. कृष्णमाचारी अपने ग्रंथ ए हिस्ट्री आफ क्लासिकल् संस्कृत लिटरेचर में संस्कृत के अनेक आधुनिक साहित्यकारों का वर्णन करते हैं, क्षमा राव का नाम तक नहीं लेते। यह प्रवृत्ति पंडित बलदेव उपाध्याय के द्वारा संपादित संस्कृत साहित्य के बृहत् इतिहास तक जारी है, इसके आधुनिक संस्कृत साहित्य पर केंद्रित सातवें खंड में क्षमा राव का संज्ञान तो लिया गया है, पर अपेक्षित विवरण नहीं है। क्षमा राव को कुछ पुरस्कार और मानद उपाधियाँ अवश्य दी गईं। 1931 ई. में उन्हें पंडिता की उपाधि दी गई। 1938 में ओंध विद्यालय ने उन्हें साहित्यचंद्रिका की उपाधि से सम्मानित किया। *तुकारामचरितम्* महाकाव्य और *उत्तरसत्याग्रहगीता* इन दो कृतियों पर पुरस्कार भी मिले। पर पुरुषप्रधान संस्कृतसमाज में उनका कर्तृत्व उपेक्षित ही अधिक रहा।

क्षमा राव अत्यंत परिष्कृत व अभिजात रुचि की महिला थीं। परिधान व गृहसज्जा में उनकी निपुणता व कलाप्रेम व्यक्त होता था। आभिजात्य उनके व्यक्तित्व की पहचान थी और रूप की वे धनी थीं। गाँधी जी तथा कांग्रेस के अन्य नेताओं ने उनके आभिजात्य और वैभव था कुलीनता को उनकी सीमाएँ मान लिया था, जब कि क्षमा राव अपनी इन सीमाओं को तोड़ कर बाहर आने के लिये भी विकल रहतीं थीं। संस्कृत में रचना कर्म के द्वारा उन्होंने ये सीमाएँ तोड़ीं। अपनी संतानों को भी उन्होंने बचपन से ही संस्कृत की शिक्षा भी दी।

क्षमादेवी के काव्य में उनके अपने उक्त व्यक्तिगत अनुभवों की प्रच्छन्न रेखाएँ देखी जा सकती हैं। उन्होंने चाचा के घर अत्यन्त असहिष्णुता और निर्दय व्यवहार को झेलते हुए किसी तरह पढ़ाई की थी। *मीरालहरी* काव्य में

मीरा की कष्टगाथा के चित्रण में उसकी छाया अन्तर्निहित है। राष्ट्रप्रेम के भाव को कर्म में चरितार्थ न कर पाने की कसक उनके *सत्याग्रहगीता*, *उत्तरसत्याग्रहगीता* और *उत्तरजयसत्याग्रहगीता* अथवा *स्वराज्यविजयः* जैसे काव्यों में झलकती है। यह क्षमादेवी नारीहृदय का संवेदन और अनुभूतिप्रवणता ही थी, जिसके कारण गीता की विधा को उन्होंने राष्ट्र के नवजागरण के शंखनाद से गुंजित करते हुए नवयुग का नया काव्य रचा।

साहित्यिक यात्रा

क्षमाराव के साहित्य की अनुसंधानकर्त्री कृष्णकांता शर्मा ने लिखा है कि क्षमा राव दस वर्ष की आयु से संस्कृत व अंग्रेजी में कविताएँ लिखने लगीं थीं। पर उनकी किशोरावस्था में लिखी रचनाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। मालवमयूर के वसंतांक में प्रकाशित उनकी कहानी *बाल्येऽपि व्यक्तिमायाति सात्त्विको गुणः* उनकी आरंभिक संस्कृत रचनाओं में है। यह एक 15वर्षीय बालिका के मनोविज्ञान का सहज स्वाभाविक निरूपण है। 1924-25 में पेरिस प्रवास के दौरान वे संस्कृत के महापंडित सिल्वाँ लेव्ही के घनिष्ठ संपर्क में रहीं, अपने संस्कृत ज्ञान को उनके सान्निध्य में परिमार्जित किया। पर संस्कृत में साहित्यकार के रूप में संस्कृत को ही एकनिष्ठ माध्यम बनाने का विचार तब तक भी उनके मन में नहीं आया। 1929 में वे स्वदेश लौटीं, तो स्वाधीनता आंदोलन अपने प्रकर्ष पर था।

दिव्यज्योतिः मासिक पत्रिका के जुलाई 1961 के अंक में प्रकाशित अपने लेख *सुरभारत्यां लिखितुं कथमहं प्रवृत्ता* (मैं संस्कृत में रचना करने में कैसे प्रवृत्त हुई) में उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा के प्रस्थानबिंदु पर प्रकाश डाला है। क्षमादेवी भोर में सागर के किनारे टहल रहीं थीं। तभी उन्होंने लाठीचार्ज की आवाजें सुनीं। सत्याग्रह के संग्राम का बिगुल उनकी भीतर भी बजा। उनके मन में यह विचार आया कि व्यास ने कुरुक्षेत्र के युद्ध को ले कर गीता लिखी, सत्याग्रह के इस युद्ध को ले कर नई गीता कोई क्यों नहीं लिखता? गीता का स्वाध्याय वे नियम से करती थीं, ऐसे में गीता में कृष्ण की संदेश उनके भीतर गूँज उठा –

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।

तथा –

तस्माद् युद्धाय युज्यस्व।

क्षमादेवी ने स्वयं अपनी पहली महाकाव्यात्मक संस्कृत रचना *सत्याग्रहगीता* की रचनाप्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए इस प्रसंग की चर्चा की है।[1] उन्हें इस बात पर भी अचरज था कि गीता का श्रीकृष्ण का संदेश

[1] दिव्यज्योतिः मासिक जुलाई 1968 में पंडिता क्षमा राव का लेख – सुरभाषायां लिखितुं कथं प्रवृत्ताऽभवम्।

सत्याग्रह के युद्ध के आह्वान के रूप में संस्कृत के पंडितों के भीतर इस तरह से क्यों नहीं गूँज रहा जैसे उनके भीतर।

तब से क्षमा राव ने स्वयं को संस्कृत लेखन के लिये अर्पित कर दिया। उनके जीवन के इस प्रस्थान के प्रेरणा पुरुष बने अंग्रेजी के महान् साहित्यकार सामरसेट माम। सामरसेट माम ने क्षमा राव को सलाह दी थी कि वे केवल संस्कृत में ही लिखा करें। निश्चय ही यह संदेश सामरसेट माम ने उपहास या परिहास के तौर पर नहीं दिया होगा, क्यों कि अपना उपन्यास *रेजर्स एज* लिखते हुए वे रमण महर्षि के आश्रम में रहे और संस्कृत में नई रचना की संभाव्यता का जायजा ले चुके थे। क्षमा राव ने 1937 के बाद से अन्य भाषाओं में रचनाकर्म एकदम बंद कर दिया और पूरी तरह संस्कृत को साहित्यरचना के माध्यम के रूप में अंगीकार किया।

इस अवधि में पारंपरिक पंडित नागप्पा शास्त्री के सान्निध्य में संस्कृत का अभ्यास उन्होंने जारी रखा। अपनी रचनाएँ भी वे नागप्पा शास्त्री को दिखाती थीं। सत्याग्रहगीता तो उन्हें पढ़ पढ़ कर सुनाई।

संस्कृत में उनकी अनिर्बाध साहित्यिक यात्रा 1930 के आसपास आरंभ हुई और अपनी मृत्यु के एक सप्ताह पूर्व तक ने निरंतर संस्कृतसाहित्यसर्जना में लगी रहीं।

उनके साहित्यिक जीवन को चार चरणों में देखा जा सकता है -

1.आरंभिक काल – जो उनकी बाल्यावस्था में दस वर्ष की आयु से आरंभ होता है।

2.अंग्रेजीसाहित्य में लेखन का काल - उनके साहित्यिक जीवन का यह दौर 1920 से 1030 तक दस वर्षों की अवधि में फैला हुआ है। इस अवधि में उनकी अंग्रेजी रचनाएँ विभिन्न पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं, उनके नाटक आधुनिक रंगमंच पर खेले गयेष उनकी कहानियों में से कुछ का मराठी में अनुवाद भी हुआ।

3.साहित्यिक यात्रा के तीसरे चरण में क्षमादेवी राव ने राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित रचनाएँ लिखीं और केवल संस्कृत में ही लिखने का संकल्प किया। उनकी पहली महाकाव्यात्मक संस्कृत रचना *सत्याग्रहगीता* 1931 में पूरी हुई। 1945ई. के आसपास तक यह दौर जारी रहा। सत्याग्रह आंदोलन का स्वतंत्रता प्राप्ति तक का वृत्तांत जिसमें गाँधीजी का उनके आत्मबलिदान तक का समग्र जीवन भी चित्रित था, उन्होंने महाकाव्यत्रयी के द्वारा प्रस्तुत किया तथा सामान्य जनों की स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी का चित्रण करने वाली कहानियाँ लिखीं।

4.जीवन के अंतिम पड़ाव में क्षमा राव की धार्मिक वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है तथा उनकी काव्ययात्रा भी राष्ट्रीय भाव की अभिव्यक्ति के स्थान पर संतों व दार्शनिकों के जीवन चरितों में रमने लगती है। *श्रीतुकारामचरितम्* (1950), *श्रीरामदासचरितम्* (1953) तथा *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* (1955) इन तीन महाकाव्यों में उन्होंने महाराष्ट्र के संतों के जीवन को विषय बनाया। गद्य में अत्यंत प्रौढ कहानियाँ भी उन्होंने इस अवधि में लिखीं।

<u>रचनाएँ</u>

क्षमा राव ने संस्कृत, अंग्रेजी तथा मराठी में रचनाएँ कीं। अंग्रजी में मौलिक लेखन के अतिरिक्त स्वरचित संस्कृत आख्यायिका – *मायाजालम्* का अंग्रेजी में अनुवाद भी उन्होंने किया। अपने संस्कृत काव्यों का भी अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने किया। किंतु उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व मौलिक अवदान संस्कृत के साहित्यकार के रूप में ही है। संस्कृत में उन्होंने अनेक विधाओं में लेखनी चलाई। विधाओं के अनुसार उनकी रचनाएँ इसप्रकार हैं -

महाकाव्य – सत्याग्रहगीता(1932), उत्तरसत्याग्रहगीता (1948), स्वराज्यविजय (1962), श्रीतुकारामचरितम् (1950), श्रीरामदासचरितम् (1953) तथा श्रीज्ञानेश्वरचरितम्(1953),

खंडकाव्य – मीरालहरी (1944)

कथासङ्ग्रह – कथापञ्चकम् (1933), ग्रामज्योतिः (1955), कथामुक्तावली (1955)

जीवनी – शङ्करजीवनाख्यानम् (1939)

यात्रावृत्तांत – विचित्रपरिषद्यात्रा (1939)

इनके अतिरिक्त गद्य में क्षमाराव के अनेक निबंध समय समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। महाकविः कालिदासः शीर्षक उनका लेख मधुरवाणी मासिक पत्रिका में छपा। *शब्दशासनानुरोधेन संस्कृतस्य नवीकरणयोजना* शीर्षक निबंध उन्होंने 1943-44 वर्ष के प्राच्यविद्यासम्मेलन के लिये लिखा था। । *विक्रमादित्यकालिदासयोः सम्बन्धः* तथा *महाकविकालिदासस्य कृतयः* शीर्षक से उनके दो निबंध साप्ताहिक *संस्कृतम्* में प्रकाशित हुए।

<u>रचनाओं का कालक्रम</u>

कवि क्षमा राव की उपरिलिखित रचनाओं में *सत्याग्रहगीता* निश्चित रूप से सबसे पहले लिखी गई। भारतरत्न महामहोपाध्याय पुरुषोत्तम वामन काणे ने उनकी अंतिम कृति *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* के 23 सितंबर 1955 की तिथि में लिखित अपने प्राक्कथन में *सत्याग्रहगीता* का रचनाकाल 1931ई.

तथा पेरिस से इसके प्रकाशन का वर्ष 1932ई. बताया है। काणे *कथापञ्चकम्* का रचनाकाल भी 1932ई. बताते हैं। रचनाओं के कालक्रम में *शङ्करजीवनाख्यानम्* तीसरे स्थान पर है। *ग्रामज्योतिः* की भूमिका में *शङ्करजीवनाख्यानम्* का रचनाकाल 1938 तथा मीरालहरी का 1940 ईं. बताया गया है। *श्रीतुकारामचरितम्* की रचना उन्होंने गुलमर्ग में 1946ई. में आरंभ की थी। पुस्तक की पुष्पिका में सूचना दी गई है कि यह कृति बंबई में दिनांक 1.4.1947 के दिन पूरी हुई। इसकी प्रकाशनतिथि 1950 ई. बताई गई है। *स्वराजयविजयः* महाकाव्य के अंत में इसकी पूर्ति दिनांक 1.8.1949 के दिन होने का उल्लेख है। *श्रीरामदासचरितम्* का रचनाकाल 1952 ई. बताया गया है और *कथामुक्तावली* का भी 1952 ई.। लीला राव दयाल *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* के लिये लिखे अपने प्रकाशकीय में बताती है कि उनकी माँ ने इस रचना का आरंभ अक्टूबर 1952 में रानीखेत में किया था, और अपनी मृत्यु के एक सप्ताह पहले ही 15 अप्रैल 1954 के लगभग इसे पूरा किया।[1]

पंडिता क्षमा राव की बारह मुख्य कृतियों को रचनाकाल की दृष्टि से इस क्रम में रखा जा सकता है –

सत्याग्रहगीता(1932)
कथापञ्चकम् (1933)
शङ्करजीवनाख्यानम् (1939)
विचित्रपरिषद्यात्रा (1939)
मीरालहरी (1944)
उत्तरसत्याग्रहगीता (1948),
कथामुक्तावली
ग्रामज्योतिः
स्वराज्यविजयः
श्रीतुकारामचरितम् (1950),
श्रीरामदासचरितम् (1953), तथा
श्रीज्ञानेश्वरचरितम्(1953)।

कोष्ठक में दिये गये वर्ष वस्तुतः पुस्तकाकार प्रकाशन के वर्ष हैं। *स्वराज्यविजयः* महाकाव्य का पहला संस्करण क्षमा राव की मृत्यु के पश्चात् निकला, जिस पर प्रकाशन तिथि 30 जनवरी 1962 अंकित है तथा कापी राइट का अधिकार लीला राव दयाल के पास होने की सूचना दी गई है। स्पष्ट ही क्षमा राव की सुयोग्य पुत्री लीला ने उनके अप्रकाशित पांडुलिपियाँ खोजते हुए गाँधी की पुण्यतिथि पर इसका प्रकाशन कराया। पर यह प्रकाशन पंडिता

[1] ग्रामज्योति, भूमिका, पृ. 4

क्षमा राव के निधन के लगभग आठ वर्ष पश्चात् क्यों हुआ इसका समाधान नहीं मिल पाता। इसी प्रकार *कथामुक्तावली* के दोनों संस्करण क्षमा राव की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुए, जब कि इसमें संकलित अनेक कहानियाँ वे अपने साहित्यिक जीवन के आरंभिक दौर में लिख चुकीं थीं। शोधकर्त्री कृष्णकांता शर्मा ने *ग्रामज्योतिः* का रचनाकाल 1926ई. इस आधार पर मान लिया है कि इस वर्ष क्षमा राव गाँधी जी से मिलने सेवाग्राम आश्रम गईं थीं। इसी तरह उन्होंने *कथामुक्तावली* का रचनाकाल 1951ई. बताया है।[1] *ग्रामज्योतिः* का पहला संस्करण क्षमा राव के निधन के तीन माह बाद जुलाई 1954 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। ऐसी स्थिति में *ग्रामज्योतिः* तथा *कथामुक्तावली* का रचनाकाल 1926ई. से 1946ई. के बीच माना जा सकता है। *स्वराज्यविजयः* महात्मा गाँधी के निधन की घटना के वर्णन के साथ समाप्त होता है। इसे क्षमा राव ने 1949 में पूरा किया।

<u>अप्रकाशित रचनाएँ</u>

डा. हरींद्र भूषण जैन ने अपने लेख *क्षमा राव – व्यक्तित्व और साहित्य* में उनकी प्रकाशित रचनाओं की उपरिलिखित सूची में से *स्वराज्यविजय* तथा *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* को छोड़ कर शेष दस रचनाओं की सूची दी है, तथा आगे लिखा है – "इन ग्रंथों के अतिरिक्त क्षमा राव ने जो कुछ लिखा है, उसका विवरण इस प्रकार है – सात एकांकी नाटक, चार तीन अंकों वाले नाटक, 35 लघुकथाएँ। लघु कथाओं में से 23 अभी अप्रकाशित हैं। कुछ निबंध पत्र और यात्रा विवरण भी लिखे हैं।"[2] डा. जैन ने अपने इस कथन का स्रोत या प्रमाण नहीं दिया है। संभवतः सात एकांकी नाटक, चार तीन अंकों वाले नाटक, 35 लघुकथाएँ क्षमा राव के अंग्रेजी में लिखे साहित्य से संबद्ध हो सकती हैं। तथापि डा. जैन के इस संदिग्ध उल्लेख से भ्रांति की शृंखला चल पड़ी है। *संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास* नामक ग्रंथ के आधुनिक संस्कृत साहित्य पर केंद्रित सप्तम खंड में लघुकाव्य शीर्षक द्वितीय अध्याय हरिदत्त शर्मा ने लिखा है, जिसमें उन्होंने बताया है कि उक्त रचनाओं के अतिरिक्त क्षमादेवी के सात एकांकी नाटक, चार तीन अंकों वाले नाटक तथा पैंचीस लघुकथाएँ भी अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं।[3] स्पष्ट है कि यह सूचना शर्मा जी ने हरींद्रभूषण जैन के लेख से ली है। पर शर्मा जी के इस कथन से लगता है कि वे

---

[1] पंडिता क्षमाराव – एक साहित्यिक मूल्यांकन, पृ. 24

[2] आधुनिकसंस्कृतसाहित्यानुशीलनम् – सं. रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद्, सागर, 1965, हिंदीखंड, पृ.18

[3] पृ. 148

क्षमा राव की संस्कृत की अप्रकाशित रचनाओं का उल्लेख कर रहे हैं, जो भ्रामक है।

संस्कृत में इतनी बड़ी मात्रा व संख्या में क्षमा राव का साहित्य अप्रकाशित रह गया हो – यह संभव नहीं है। क्षमाराव ने संस्कृत की अपनी साहित्यिक यात्रा जब विधिवत् आरंभ की, तो वे बहुत साधनसंपन्न थीं। अपनी प्रायः सभी संस्कृत रचनाएँ उन्होंने अपने खर्च से प्रकाशित करवाईं, उनके माध्यम से आर्थिक लाभ की अपेक्षा नहीं रखी। कृष्णकांता शर्मा ने पंडिता क्षमाराव पर अनुसंधान कार्य किया है, उन्होंने अपने शोधप्रबंध में प्रमाणित किया है कि क्षमा राव ने संस्कृत में किसी नाट्यकृति की रचना नहीं की। उनकी पुत्री लीलाराव दयालु ने अवश्य अपनी माँ की कुछ संस्कृत कहानियों को आधार पर बना कर संस्कृत में रूपकों की रचना की है। इन रूपकों का प्रकाशन भी हुआ है, उनकी मूल लेखिका के रूप में लीला राव ने अपनी माँ का नाम दिया है, संभवतः इस आधार पर क्षमाराव को संस्कृत की नाट्यकार भी मान लिया गया है। क्षमा राव की अंतिम कृति निश्चित रूप से *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* है, जिसे उन्होंने अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पहले पूरा किया। उनकी अनेक रचनाएँ अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं – यह कथन अप्रामाणिक है।

क्षमादेवी ने स्वाध्याय के द्वारा ही पाश्चात्त्य और पौरस्त्य साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। अंग्रेजी और फ्रेंच साहित्यकारों में थामस हार्डी, मोपाँसा, पिरांडेलो, डी. आनुझियो, इब्सन और गाल्सवर्दी से वे विशेष प्रभावित थीं। कालिदास, भवभूति, भारवि आदि महाकवियों के काव्यों का उन्होंने पारायण किया था, इन कवियोंकी अनुगूँज उनकी रचनाओं में बराबर सुन पड़ती है। संस्कृत के पंडितों व पत्रकारों में क्षितीशचंद्र चटर्जी, हीरानंद शास्त्री, के.एम. पणिक्कर, नागप्पा शास्त्री, चारुदेव शास्त्री, व्ही. राघवन्, पी.वी. काणे आदि का उन्हें स्नेह तथा मार्गदर्शन मिला। विदेशी प्राच्यविद्याविदों में सिल्वाँ लेव्ही, ल्यूडर्स, केंब्रिज के रास, जर्मनी के वन-ग्लेजनेस के संपर्क में वे आयीं।

समकालीन विद्वानों में नागप्पशास्त्री पर क्षमा राव की अगाध श्रद्धा थी. अपनी मीरालहरी उन्हें समर्पित करते हुए वे लिखती हैं –

वशंवदा यद्रसनाग्ररङ्गे
मनोहरा नृत्यति देववाणी।
यदीयवक्त्राद्घटिकान्तराले
नवोदया श्लोकशती निरेति।।

(जिनकी रसना या जिह्वा के रंगमंच पर देववाणी मनोहर नर्तकी की तरह नृत्य करती है, जिनके मुख से एक घड़ी के समय स्वरचित नये श्लोकों की झड़ी लग जाती है)

पदे च वाक्ये च तथा प्रमाणेऽ -
प्याव्याहता यस्य मतिर्विभाति।
यस्य प्रयासैरजरामरारैषा
प्रयाति भाषा बहुशः प्रसारम्।।

(व्याकरण, मीमांसा तथा न्यायशास्त्र में जिनकी बुद्धि निर्बाध प्रकट होती है, जिनके प्रयासों से अजर अमर यह देववाणी संस्कृत अनेक से प्रसार को प्राप्त हो रही है),

अपश्चिमः प्रौढविपश्चितां यः
सारस्वताम्भोधितिमिङ्गिलेन्द्रः।।
नागप्पशास्त्रिद्विजपुङ्गवाय
पूज्याय तस्मै कृतिमर्पयामि।।

(जो प्रौढ विद्वानों में श्रेष्ठ हैं. सारस्वत महासागर के तिमिंगिलों के राजा हैं, ऐसे द्विजपुंगव पूज्य नागप्पशास्त्री को मं यह कृति *मीरालहरी* समर्पित करती हूँ।)

नागप्प शास्त्री रचनाओं के संशोधन में उनकी सहायता करते थे। अपनी पहली रचना सत्याग्रहगीता तो उन्होंने शास्त्री जी को एक एक श्लोक पढ़ कर सुनाई थी। क्षमा देवी ने इस समर्पण के द्वारा अपनी कृतज्ञता के गुण को भी प्रकट किया है।

पर क्षमादेवी राव के सारे साहित्यिक जीवन पर उनके पिता शंकर पांडुरंग का परोक्ष पर सर्वातिशायी प्रभाव है। ऐसा लगता है जैसे वे साहित्यरचना के द्वारा अपने पिता के ही स्वप्नों और आकांक्षाओं को स्वर दे रही हों। शंकर पांडुरंग पंडित पारंपरिक पंडितपरिवार में जन्मे, पर वे बालविवाह के विरोधी और विधवाविवाह के समर्थक थे। क्षमा राव के साहित्य में स्त्रीविमर्श तथा प्रगतिशीलता इसीलिये विशेष परिस्फुट है।

क्षमा देवी ने आधुनिक संस्कृत साहित्य को सर्वथा अछूते और अभिनव आयाम दिये। उन्होंने पहली बार सत्याग्रह आंदोलन को ले कर अपने समय की नई गीता रची, संस्कृत में निम्नवर्ग लोगों के जीवन को ले कर मार्मिक कहानियाँ लिखीं, यात्रावृत्त तथा जीवनी की विधाओं का नवाविष्कार किया। संस्कृत में किसी भी साहित्यकार ने अपने पिता की ऐसी विशद, प्रामाणिक और समग्र जीवनी नहीं लिखी है, जैसी क्षमादेवी राव ने *शङ्करजीवनाख्यानम्* में लिखी। *शङ्करजीवनाख्यानम्* अभी तक संस्कृत में अपने ढंग की एकमात्र जीवनी बनी हुई है। इसी तरह *विचित्रपरिषद्यात्रा* के

रूप में यात्रावृत्तांत विधा का भी एक अनुकरणीय उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया।

---000---

अध्याय 3
क्षमादेवी के स्वतंत्रतासंग्रामविषयक महाकाव्य

सत्याग्रहगीता की रचना क्षमाराव ने 1931 ई. में की। गाँधीजी की दांडी यात्रा इसका प्रेरणा स्रोत थी। नमकसत्याग्रह ने सारे देश को आंदोलित किया था। क्षमा राव ने नये युग की नई गीता का इस घटना को प्रस्थानबिंदु बनाया। कृष्ण की गीता के ही समान सत्याग्रहगीता में भी 18 अध्याय हैं, श्लोक संख्या गीता से किंचित् न्यून (659) है। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ गाँधीजी के आंदोलन से लगा कर में गाँधी इरविन समझौते तक की घटनाओं की वर्णन क्षमा राव वे इस काव्य में किया है। भारत में ब्रिटिश शासन के भय से कोई भी प्रकाशक इस कृति को प्रकाशित नहीं कर सकता था। क्षमा राव के पास अपने पति का संबल था, पेरिस के चार वर्ष के प्रवास में वहाँ सिल्वाँ लेव्ही जैसे संस्कृतमनीषी की शुभकामनाएँ उन्हें मिलीं थीं। उन्होंने अपनी इस रचना को पेरिस में छपने के लिये भेजा। संस्कृत में लिखी उनकी यह अनोखी कृति 1932 में पेरिस से छपी। योरोप की धरती से छपने वाला आधुनिककाल में रचा संस्कृत का यह पहला महाकाव्य था, और कदाचित् अभी तक योरोप से छपने वाला संस्कृत का एकमात्र आधुनिक महाकाव्य बना हुआ है।

वास्तव में सत्याग्रहगीता का प्रकाशन संस्कृतसाहित्य के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। संस्कृत के साहित्यजगत् में इससे नई हलचल हुई। भारतरत्न महामहोपाध्याय पुरुषोत्तम वामन काणे लिखते हैं –

"This first poem was greeted with applause by Sanskrit scholars and men in public life".[1]

फ्रांस में प्रकाशित होने के कारण फ्रांस के साहित्यजगत् में भी इस कृति की चर्चा हुई। दि फ्रेंच रिव्ह्यू ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा – It's

[1] श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, प्राक्कथन

fluent polished Sanskrit at once rivets the interest of the reader wih its style and subject mantter"[1]

टाइम्स आफ इंडिया ने इसे सर्वाधिक उल्लेखनीय कृति बताया।[2]

विषयवस्तु

सत्याग्रहगीता के आरंभिक पाँच सर्गों में देश में हो रही उथलपुथल का चित्रण है। जमींदारों के अत्याचारों का रोंगटे खड़े करदेने वाला वर्णन, पाँचवें अध्याय में कर्नल डायर की क्रूरताओं का कच्चा चिट्ठा बहुत साहस के साथ लिखा गया है। सातवँ अध्याय में मलाबार में मोपला और हिंदुओं के बीच हुए दंगों का वर्णन है। आठवें सर्ग में साइमन कमीशन और देश में उस पर हुई व्यापक विरोधात्मक प्रतिक्रिया का चित्रण है। क्षमा राव की भाषा प्रखर, पैनी और यथार्थप्रवण है। उपमान और बिंब बहुत सहज हैं। क्षमा राव उस समय मुंबई में थीं, इस लिये मुंबई का एक चित्र उन्होंने इस अवसर का खड़ा कर दिया है -

सैमनीयस्य सङ्घस्य जिज्ञासोर्भारतस्थितम्।
बहिष्कारः कृतो लोकैर्निश्चितं नायकैर्यथा।
सैमनप्रमुखे सङ्घे मुम्बापुरमुपागते।
श्मशानमिव साक्षात् तत् कृष्णध्वजमयं बभौ।।
बद्धवातायनद्वारां निवृत्तनिखिलोद्यमाम्।
पुरीं शून्यामपश्यंस्ते दग्धां पाम्पेपुरीमिव।। (8.15-17)

(जैसा नेताओं ने निश्चित किया था, भारत की स्थिति का जायजा लेने के लिये आये साइमन कमीशन का जनता ने बहिष्कार किया। मुंबई में साइमन की अगुवाई में जब कमीशन के सदस्य आये, तो सारी मुंबई काले झंडों से पटी श्मशान की तरह लग रही थी। लोगों ने द्वार और खिड़कियाँ बंद कर लिये थे, कामकाज समेट लिया था। उन लोगों ने सारा शहर इस तरह सूना देखा जैसे पम्पाई नगर हो।)

नवे अध्याय में वाइसराय इर्विन के संदेश और उस पर कांग्रेस के नेताओं की प्रतिक्रिया का वर्णन है। दसवें में गांधीजी द्वारा वाइसराय को लिखे गये पत्र का प्रभावशाली अनुवाद किया गया है। गाँधी जी की भाषा पारदर्शी व बेबाक है। वे कहते हैं –

निरङ्कुशाः प्रवर्तन्ते यस्मिन् राज्येऽधिकारिणः।
शासनं तद्वरं नष्टं प्रजाहितविवर्जितम्।। 10.17

---

[1] पं. क्षमाराव एक साहित्यिक मूल्यांकन, पृ. 272 पर उद्धृत

[2] वही - "From more than one point of view this is a most remarkable work"

(जिस राज्य में अधिकारी निरंकुश हो कर काम करें, प्रजा के हित से रहित उस शासन का नष्ट होजाना अच्छा है।)

सत्याग्रह के दर्शन का सार क्षमाराव ने यहाँ उनके शब्दों में प्रस्तुत कर दिया है –

दुर्बला ननु गण्यन्ते शान्तिमार्गावलम्बिनः।
परं सत्याग्रहाद् विद्धि नास्ति तीव्रतरं बलम्।। 10.25

(शांति के मार्ग पर चलने वालों को कमजोर समझा जाता है। पर यह जान लो कि सत्याग्रह से अधिक शक्तिशाली और कोई बल नहीं है।)

गाँधी जी स्पष्ट और दो टूक शब्दों में इरविन को दस दिन का समय देते हैं और कहते हैं –

पत्रमेतदनादृत्य यदि स्थास्यसि निर्दयः।
अधर्मस्य फलं घोरं प्रतीक्षेथा ध्रुवं ततः।। 10.38

(यदि मेरे पत्र का अनादर कर के निर्दय बने रह जाओगे, तो अपने अधर्म को निश्चित घोर फल की प्रतीक्षा करते रहना।)

ग्यारहवे सर्ग में दांडी यात्रा के लये गाँधी जी के प्रस्थान का ओजस्वी चित्र खींचा गया है। गाँधी जी को नमक सत्याग्रह की सफलता के साथ ही यरवडा जेल में बंद कर दिया जाता है। नमकसत्याग्रह के सारे देश में प्रभाव तथा उसके पश्चात् होने वाली घटनाओं का चित्रण बारहवें अध्याय में किया गया है। क्षमा राव बंबई में रह कर लिख रहीं है, अतः बंबई में होने वाली घटनाओं का चित्रण प्रत्यक्षदृष्ट के समान उन्होंने किया है। जनजागरण तथा शराब की दूकानों पर धरने की घटनाओं से अंग्रेज शासन किस तरह भीतर भीतर दहल गया है -- यह पढ़ते हुए हम अनुभव करते हैं। तेरहवें अध्याय में धरीवाल सैनिकों के निःशस्त्र भारतीयों पर गोली चलाने के इंकार और सैनिकों को मृत्युदंड तथा कारावास आदि दंड दिये जाने की घटनाएँ वर्णित हैं। पेशावर में इनकी सहानुभूति में लोगों का जुलूस और उस पर गोलियों की बौछार का वर्णन करते हुए कवि का क्षोभ शब्दों में फूट पड़ा है। उसे इस बात पर आश्चर्य है कि इसप्रकार के नृशंस कार्य करने वाले लोग अपने आपको मसीही धर्म के अनुयायी कहतें हैं। क्षमा देवी का साहस यहाँ अद्भुत है। जिस धर्म के के अनुयायी देश की धरती पर राज कर रहे हैं, उसी के नाम पर किये जाने वाले पाखंड और दमनचक्र का कच्चाचिट्ठा उन्होंने खोल कर रख दिया है।

किमुत्तरं प्रदास्यन्ते शासका दुष्टबुद्धयः।
स्वकर्मणां परे लोके येशुक्रिस्तानुयायिनः।।
किं धर्मेण प्रभोर्येशोस्त्यक्तासोः प्राणिनां कृते।
तदौदार्यविरुद्धं चेद्वर्तेरन्ननुयायिनः।। 13. 27-28
क्रैस्तवेदेन किं कार्यं दशाज्ञाभिश्च किं फलम्।

को वाऽर्थश्चरितैः पुण्यैर्येशुक्रिस्तमहात्मनः।।
किं वा धर्मोपदेशेन प्रार्थनामन्दिरेण वा।
किं च पातेन जानुभ्यां किं वा ध्याननिमीलनैः।।
किं दृष्टान्तैरुदारैस्तैः किं येशोः कीर्तितैर्गुणैः।
सत्यदानदयाधर्मक्षमाधृतिमुखैरपि।। 13.30-32

(प्राणियों को बचाने के लिये अपने प्राण देने वाले प्रभु यीशु के धर्म का क्या लाभ, यदि उनके अनुयायी उनकी उदारता के ठीक विपरीत आचरण कर रहे हों? क्रिस्तुवेद या बाइबिल का क्या काम, दस आज्ञाओं का क्या फल और धर्म के उपदेश से भी क्या करना तथा महात्मा क्राइस्ट के पावन चरित से भी क्या प्रयोजन? घुटनों के बल प्रार्थना के लिये गिरने और ध्यान में आँखें मूँदने से क्या तथा ऊँचे ऊँचे दृष्टांत बखानने और यीशु के गुणों के कीर्तन से भी क्या जिनमें सत्य, दान, दया, धर्म और धैर्य का संदेश दिया जाता है?)

चौदहवें अध्याय में शोलापुर में जन आंदोलन व अंग्रेज शासकों द्वारा न्याय की धज्जियाँ उड़ाते हुए निर्दोष लोगों को फाँसी पर चढाने की घटनाएँ वर्णित हैं। पंद्रहवें अध्याय में कवि ने बंबई में लाठीचार्ज की घटनाओं के वर्णन के साथ देशसेविकाओं पर बर्बर अत्याचार का चित्रण किया है। अवंतिका नामक कार्यकर्त्री का साहस अप्रतिम है। इन सब घटनाओं की मीमांसा कवि ने एक दार्शनिक की भाषा में की है –

अलं शमयितुं दीपं बालोऽपि श्वासलेशतः।
निर्वापयितुमर्कस्य ज्योतिस्तु प्रभुरस्ति कः।।
भिन्द्यात् प्रायेण मल्लोऽपि शिलास्तम्भं बृहत्तरम्।
कल्पान्तेऽपि न शक्तः स्याद् वक्रीकर्तुं मनागपि।।
जलमुत्क्वथितं क्वापि पुनर्गच्छति शीतताम्।
मनस्तु क्षुभितं नृणां न निवर्तेत लक्ष्यतः।।
शक्यो वारयितुं चापि कथञ्चिद् वडवानलः।
न तु मोहयितुं शक्यः सकृज्जागरितो जनः।। 15.24-27

(जलते दीपक को बच्चा भी एक फूँक से बुझा सकता है। पर सूर्य की ज्योति को बुझाने में कौन समर्थ होगा? कोई पहलवान शिलास्तंभ को तोड़ सकता है, पर वह पत्थर को टेढ़ा कर डाले यह नहीं हो सकता। उबलता हुआ जल फिर से शीतल हो सकता है। पर जनता का मन एक बार विक्षुब्ध हो गया, तो फिर उसे बहलाया नहीं जा सकता।)

सोलहवें अध्याय में विदेशी वस्त्रों का व्यापार रोकने के लिये सेवयंसेवकों द्वारा माल की ढुलाई करने वाले वाहनों की रोक का विशद वर्णन है। बाबू नामक युवक का आत्मबलिदान बहुत संवेदनशीलता के साथ कवि ने

यहाँ चित्रित किया है। बाबू विदेशी कपड़े ले जा रही गाड़ी के आगे लेट जाता है, ड्रायवर उस पर गाड़ी चला देता है। मूर्च्छित बाबू को अस्पताल ले जाया जाता है, जहाँ वह दम तोड़ देता है। इस घटना से बंबई शहर में सनसनी फैल जाती है। बाबू की अंतिम संस्कार के समय श्मशान में भीड़ उमड़ पड़ती है। व्यापारी लज्जित हो कर विदेशी वस्त्रों का व्यवसाय बंद कर देते हैं। सत्रहवें अध्याय में स्वाधीनता संग्राम में स्त्रियों के अपूर्व साहस का आँखों देखा वर्णन है। यह विवरण आत्मकथात्मक भी है। क्षमा देवी को नेताओं ने बोर्सद नामक गाँव में दशसेविकाओं पर हुए अत्याचारों और उनकी वर्तमान स्थिति देखने के लिये भेजा था। क्षमा देवी लिखती हैं -

पर्याटिषं प्रतिग्रामं सह पत्न्या महात्मनः।
पांसुदूषितमार्गेण गाढदुर्भिक्षशंसिना।। 17.47

(धूल से सने और भयंकर दुर्भिक्ष का कथा कहते मार्ग से मैं महात्मा की पत्नी -कस्तूरबा – के साथ गाँव गाँव में गई।)

क्षमा देवी ने घायल स्त्रियों से भेंट की। वे कई शविरों में गईं। इन अनुभवों को उन्होंने *ग्रामज्योतिः* की कहानियों में भी सँजोया है।

अठारहवें अध्याय में पूना में गांधी जी के आगमन के साथ लोगों में अपार उत्साह और गांधी जी के दर्शन से कवि के मन में उपजी भावधारा की व्यक्ति है। गाँधी जी का अलौकिक विग्रह क्षमा देवी ने पूरी आस्था के साथ प्रस्तुत किया है। इसके पीछे गीता में कृष्ण का यह कथन गुंजित है कि धर्म की हानि व अधर्म का अभ्युत्थान होने पर मैं अवतार लेता हूँ।

निक्षिप्तं विधिना तेजस्तस्मिन् गान्धौ महात्मनि।
जन्मभूमिं तमोग्रस्तां विद्योतयितुमात्मनः।।
न परं भारतं वर्षं विदूरा अपि भूमयः।
भासिताः सत्यदीपेन ज्वालितेन महात्मना।।
तस्मादधर्मनाशाय प्रशान्तेः स्थापनाय च।
गान्धीरूपेण भगवानवतीर्णः किमु स्वयम्।। 18.15-18

(गाँधी महात्मा में विधाता ने तेज स्थापित कर दिया है, जिससे अंधकार से ग्रस्त अपनी जन्मभूमि को वे आलोक दे सकें। केवल भारतवर्ष ही नहीं दूर दूर के देश भी महात्मा के सत्यदीप के प्रकाश से आलोकित हैं। इसलिये लगता है कि क्या अधर्म के नाश व शांति की स्थापना के लिये स्वयं भगवान् ही गाँधी के रूप में अवतरित तो नहीं हो गये?)

इस शुभाशा के साथ क्षमा राव ने काव्य समाप्त किया है –

सत्यं विजयतां लोके मुक्तं भवतु भारतम्।
नन्दन्तु सुखिनः सर्वे देशजाश्च विदेशजाः।। 18.19

शैली – सत्याग्रहगीता को एक ओर तो क्षमा राव ने गीता की शैली में गाँधीजी के संवाद व संदेश के निबंधन करते हुए लिखा है, दूसरी ओर कालिदास उनके मानस में निरंतर बने हुए हैं। सत्याग्रहगीता का पहला ही पद्य लें -

गम्भीरो विषयः क्वायं श्रेष्ठः सत्याग्रहात्मकः।
कृत्स्ने जगति विख्यातः क्व मे लघुतमा मतिः।।
तथापि देशभक्त्याऽहं जाताऽस्मि विवशीकृता।
अत एवास्मि तद्गातुमद्युक्ता मन्दधीरपि।।

(कहाँ तो सत्याग्रहरूपी गंभीर और श्रेष्ठ यह विषय जो सारे संसार में आज विख्यात है और कहाँ में अत्यल्प बुद्धि। तथापि मैं देशभक्ति के द्वारा विवश कर दी गई हूँ, इसीलिये मंदबुद्धि होते हुए भी उस सत्याग्रह का गान करने के लिये तत्पर हुई हूँ।)

क्षमा देवी के इस कथन पर कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य के इन पद्यों की स्पष्ट छाया है –

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुस्तुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।
मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।

इसके आगे भी क्षमा देवी के कथन कालिदास की कथनभंगी का ही अनुसरण करते हैं-

दुहिता शङ्करस्याहं पण्डितस्य क्षमाभिधा।
अक्षमाऽपि कवेर्मार्गे श्रोतव्या वस्तुगौरवात्।। 1.4

(मैं पंडित शंकर की बेटी क्षमा, कविमार्ग में अक्षमा या असमर्थ, पर मेरा काव्य आप विषयवस्तु के गौरव के कारण सुनें।)

यहाँ क्षमादेवी ने क्षमा और अक्षमा – इन दो शब्दों के प्रयोग के द्वारा विरोधाभास और अनुप्रास अलंकारों का सुंदर निर्वाह करते हुए अपनी कवित्वशक्ति का परिचय भी दे दिया है।

सत्याग्रहगीता में संस्कृत भाषा का युगोचित नया रूप उभरा है। अनेक संस्कृत शब्दों को नया अर्थ मिला है। तान्तव (सूत कातना) और कर्तन (कताई) ये दो शब्द क्षमा देवी ने पहली बार अपनी कविता के द्वारा संस्कृत में संचरित कर दिये। गाँधीजी के जीवनदर्शन और कर्म को व्यक्त करने के लिये कवि ने तदनुरूप भाषाशैली अपनाई है। इसमें उसने न कहीं अतिशयोक्ति की है, न यथार्थ का हनन ही। पर अपने नायक की प्रेरणाप्रद होने के साथ विश्वसनीय और प्रामाणिक छवि का अंकन करने में वह सफल है।

संदेश - सत्याग्रहगीता गाँधी के विचारों, जीवनदर्शन व कार्यपद्धति को प्रस्तुत करती है। गाँधी जी के कथनों का सहज सुंदर रूप में प्रस्तुतीकरण करते हुए उनके संदेश का प्रसार इसका एक ध्येय है। चरखे व उस सूत की कताई को गाँधी जी ने स्वाधीनता व स्वराज्य के भाव से किसप्रकार संबद्ध किया यह उन्हीं के शब्दों में क्षमादेवी ने बताया है।

विधेयं तान्तवं तस्मादल्पलाभमपि ध्रुवम्।
येन सुष्ठूपयोगः स्यात् कालस्येति जगाद सः।। 33

(गाँधी जी ने कहा -- भले ही कम लाभ वाला हो, पर सूत कातने का काम अवश्य करना चाहिये। इस लिये समय का अच्छा उपयोग होगा)

कुर्वन्तो नित्यमेवं हि स्वातन्त्र्यं प्राप्स्यथाचिरात्।।
स्वातन्त्र्याद्धि मनुष्याणां प्रियमन्यन्न विद्यते।। 34

(इस तरह चर्खे पर काम करते हुए तुम लोग शीघ्र ही स्वतंत्रता हासिल कर सकोगे। स्वतंत्रता से बढ़ कर मनुष्यों को और कोई वस्तु प्रिय नहीं होती।)

अथ चेत् तान्तवं धर्म न करिष्यथ बान्धवाः।
बद्धाः परयुगे नित्यं दासभावे निवत्स्यथ।। 35

(हे बंधु जनो, यदि आप लोग सूत कातने के इस धर्म का पालन नहीं करोगे, तो दूसरे का दासता के बंधन में बँधे रह जाओगे।)

जीवन्तोऽपि न जीवन्ति परदास्यधुरन्धराः।
पारतन्त्र्यमुदाराणां मरणादतिरिच्यते।। 1.36

(दूसरे की दासता में धुरंधर लोग जीवित रह कर भी जीवित नहीं है। उदार जनों के लिये परतंत्र रहना मरने से भी बुरा है।)

दासभावे स्थितैः कष्टं सोढव्यमतिदुस्सहम्।
दासोऽश्नाति स्वकं खाद्यं काकशङ्की पदे पदे।। 1.37

दासभव में रहने वालों को अत्यंत दुस्सह कष्ट झेलने पड़ते हैं। दास अपना स्वयं का भोजन भी कौवे की तरह शंकित हो कर खाता है।)

सूक्तियाँ – क्षमा राव के काव्य में विचारप्रवणता के कारण सूक्तियाँ रत्नों की भाँति गुँथ कर आती हैं। कतिपय उदाहरण सत्याग्रहगीता से प्रस्तुत हैं-

राजापि सरसः शुष्कात् पयः पातुं न पारयेत्।3.8
(सूखे सरोवर से राजा भी पानी नहीं पी सकता।)

शस्त्रास्त्रबलहीनानां बलं सत्याग्रहः परम्।। 3.21
अस्त्र शस्त्र के बल से रहित लोगों के लिये सत्याग्रह परम बल है।)

भारतं शासितुं शक्यं धर्मैणैव हि केवलम्
न स्वार्थलोलुपत्वेन, न च निर्घृणभावतः।। 6.7

(भारत पर शासन केवल धर्म के द्वारा ही किया जा सकता है, न कि स्वार्थ से लोलुप हो कर न नृशंस बन कर)।

सत्याग्रहगीता का सार क्षमा देवी के शब्दों में यह है –

जातस्य चेद् ध्रुवो मृत्युर्देशकार्ये वरं मृतिः।

जीवनं न तु दासस्य देशद्रोहविधायिनः।। 17.60

(यदि जो जन्मा है, उसका मरण ध्रुव है, तो देश के काम के लिये मरना ही अच्छा है। देशद्रोह करने वाले दास का जीना अच्छा नहीं।)

कल्हण की राजतरंगिणी के समान सत्याग्रहगीता का कवि भी अपने समकाल की घटनाओं को तटस्थ हो कर प्रस्तुत करता है। सत्याग्रहगीता की भाषा गांधीवाद तथा असहयोग के वातावरण में रमी हुई है।

उत्तरसत्याग्रहगीता

क्षमादेवी सत्याग्रहगीता की रचना के द्वारा अपनी पहचान बना चुकीं थीं। सत्याग्रहगीता एक आवेग के साथ रची गई, उसके पीछे स्वाधीनता आंदोलन में कवि का संलग्नता और गाँधी जी के प्रति अकुंठ आस्था की प्रेरणा थी। सत्याग्रहगीता अपने समय का एक इतिहास भी थी – कवि के द्वारा प्रत्यक्ष देखा गया और जिसमें कवि स्वयं सम्मिलित भी थी। क्षमादेवी ने सत्याग्रहगीता की रचना के बाद कतिपय मार्मिक कहानियाँ लिखीं, पर सत्याग्रहगीता की शैली में आगे का काव्यात्मक इतिहास रचने का उनका विचार न था।

उत्तरसत्याग्रहगीता उन्होंने थिरुवेन्नियलल्लूर के गांधी मिशन के अनुरोध के कारण लिखी। इस काव्य की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि 1944 में मई के प्रथमसप्ताह में मुझे गाँधी मिशन, तिरुवेलपुर (मद्रास) के भिक्षु निर्मलानंद का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने सूचित किया था कि उन्होंने एक विज्ञप्ति निकाल कर गाँधीजी के सत्याग्रह पर सिंतबर 1944 तक अप्रकाशित संस्कृत महाकाव्यों की पांडुलिपियाँ आमंत्रित की हैं। निर्मलानंद जी ने निर्धारित तिथि तक अपना भी एक अप्रकाशित संस्कृत महाकाव्य भेजने के लिये क्षमा राव से अनुरोध किया था। इस अनुरोध को क्षमा राव ने ने चुनौती के रूप में स्वीकार किया। पाँच महीने की अल्पावधि में 47 अध्यायों का विशाल महाकाव्य लिख डालना एक असाधारण रचनात्मकता का परिचायक है। क्षमा राव ने इस काव्य की रचना के लिये पट्टाभिसीतारमैया के कांग्रेस के इतिहास तथा हरिजन के पुराने अंकों का अध्ययन किया।

उत्तरसत्याग्रहगीता में कुल 1989 श्लोक हैं। सत्याग्रहगीता का समापन जिस प्रसंग से क्षमा राव ने किया था, उत्तरसत्याग्रहगीता को क्षमाराव ने वहीं से उठाया है। क्षमाराव ने यह काव्य 4.6.1945 के दिन पूर्ण किया।

पहले अध्याय से अट्ठाइसवें अध्याय तक दांडी यात्रा के पश्चात् देश में जन्मी नई चेतना का निरूपण है। उन्तीसवँ अध्याय में मंदिरों में अछूतों का प्रवेश, तीसवें में चंपारणसत्याग्रह, इतीसवें में गाँधी जी की वृंदावनयात्रा, बत्तीसवें में राष्ट्रीय ध्वज का स्वरूप, तैंतीसवें में विश्वयुद्ध की घोषणा, चौंतीसवें में रियासतों में विद्रोह, पैंतीसवें में पौलेंड की अपील, छत्तीसवें में कांग्रेस का घोषणापत्र, सैंतीसवें में ब्रिटिश की नीतियाँ, अड़तीसवें में गाँधी जी की शांतिनिकेतनयात्रा, उनचालीसवें में विश्वयुद्ध, चालीसवें में कांग्रेस का रामगढ में सम्मेलन, इकतासीलवें में जिन्ना का मुसलमानों के लिये आह्वान, बयालीसवें में क्रिप्स की भारतयात्रा, तिरतासीलवें में भारत छोड़ो आंदोलन का श्रीगणेश, चौवालीसवें में बंगाल का अकाल, पैंतालीसवे में गाँधी जी का कांग्रेस के लिये समर्थन, छियालीसवे में गाँधी व जिन्ना की वार्ता तथा अंतिम सैंतालीसवे अध्याय में गाँधी जी की सेवाग्राम में वापसी वर्णित है।

सत्याग्रहगीता की तुलना में क्षमा राव की भाषा में यहाँ काव्यात्मकता तथा प्रौढता अधिक विकसित रूप में है। घटनाओं में प्रामाणिकता है। पद्यों में कवि उपमा, यमक और श्लेष अलंकारों की झड़ी लगा देती हैं। तथापि आख्यान का प्रवाह कहीं अवरुद्ध नहीं होता। एक उदाहरण देखें –

अमृता साऽमृतासारैर्वचनैर्विनता मुनिम्।
सिषेवे लोकसंसेव्यं कृष्णा कृष्णमिवागतम्।।1.7

यहाँ अमृता (राजकुमारी अमृतकौर) के लिये अमृत से भरे वचन बोलने का कथन तथा विनता यह विशेषण अनुप्रास से अनुप्राणित परिकर अलंकार का आधान इस पद्य में करते हैं। *सिषेवे लोकसंसेव्यं कृष्णा कृष्णमिवागतम्* – इस उत्तरार्ध में भी अनुप्रास की छटा के साथ उपमा का सुंदर विन्यास है। विरोध अलंकार के द्वारा गाँधी जी का वर्णन अद्‌भुत ही है –

क्रशीयानपि तेजस्वी दीनोऽपि प्राभवान्वितः।
एकदन्तोऽप्यवक्रास्यः श्रुतौ साक्षाद्विनायकः।।

(वे कृशकाय होते हुए भी तेजस्वी थे, दीन हो कर भी प्रभाव से परिपूर्ण थे, एकदंत (एक दाँत वाला, गणेश) हो कर भी उनका मुख वक्र नहीं था, श्रुति (सुनना, वेद) में वे साक्षात् विनायक (नेता, गणेश) थे।

स्वराज्यविजयः

स्वराज्यविजयः स्वाधीनता आंदोलन तथा गाँधीजी के चरित्र को ले कर क्षमादेवी द्वारा प्रणीत महाकाव्यत्रयी की अंतिम कड़ी है। *सत्याग्रहगीता* तथा *उत्तरसत्याग्रहगीता* की शृंखला में इसे *उत्तरजयसत्याग्रहगीता* के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 54 अध्याय हैं। इसका कलेवर पिछले दोनों

महाकाव्यों से बड़ा है, तथा इतिहास व घटनाओं का भी इसमें पिछले दोनों काव्यों की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण फलक उठाया गया है।

काव्य गाँधी व जिन्ना की विभाजन के विषय में वार्ता के विफल होने की घटना के वर्णन से आरंभ होता है तथा गांधी जी के निर्वाण पर समाप्त होता है।

सेवाग्राम का वर्णन, गांधी जी के विचारों व संदेशों का चित्रण प्रभावशाली है। चौथे अध्याय में हिटलर के निधन के समाचार के साथ विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय विश्वव्यापी प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते हुए क्षमा लिखती हैं –

फ्रांसाङ्ग्लामेरिकारूसीप्रदेशेषु जितारिषु।
दिक्षु दिक्षु समश्रावि प्रहर्षस्य महाध्वनिः।।
जेतृणां शुश्रुवे यावज्जयघोषप्रतिध्वनिः।
हाहाकारः श्रुतस्तावच्छार्मण्येतालिदेशयोः।।
ये सेनापतयः पूर्वं गोरिंगकैटलादयः।
शार्मण्यैः पूजितास्तेऽद्य वधदण्ड्या मताः परैः।।
परस्त्रीलोलुपः पूर्वं दुष्टबुद्धिर्दशाननः।
न केवलं स्वयं नष्टः स्वं कुलं च व्यनाशयत्।।
प्रभावोत्कर्षगृध्नुः सन् कृत्स्नविश्वजिगीषया।
हिट्लरोऽपि विनष्टासुर्मातृभूमिं व्यनाशयत्।। स्वराज्यविजय, 4.5-9

(फ्रांस, इंग्लैंड तथा रूस देशों में शत्रुओं को जीत लिया गया। दिशा दिशा में बड़े हर्ष की महाध्वनि सुनाई देने लगी। पर दूसरी ओर जर्मनी ओर इटली देशों में हाहाकार मच गया था। गोरिंग केटल आदि जो पहले सेनापति जर्मनी में पुज रहे थे, अब फाँसी पर लटका दिये जाने के योग्य समझे जा रहे थे। पहले के समय में परस्त्रीलोलुप दुष्टबुद्धि दशानन जिस तरह न केवल स्वयं नष्ट हुआ, अपने कुल का भी उसने सर्वनाश करवा डाला, उसी तरह अपने प्रभाव के उत्कर्ष को बढ़ाने के लालची हिटलर ने सारे विश्व की जीतने की इच्छा से अपने प्राण तो गँवाये ही, अपनी मातृभमि का भी विनाश करा दिया।)

गाँधी जी के मन की वेदना, करुणा, देश के लोगों से उनका तादात्म्य – इनका चित्रण क्षमा ने इस काव्य अधिक तल्लीन हो कर किया है। धरती का उच्छ्वास और इतिहास का करुण क्रंदन हम इसे पढ़ते हुए सुनते हैं। गांधी जी के भीतर की करुणा का संवेदनशील चित्रण क्षमा राव ने किया है। क्षमादेवी ने छंद और लय की भूमि पर करुणा के निर्झर प्रवाहित कर दिये हैं। उदाहरण देखें -

एकदा ब्रीहिकेदारे पादचारेण गच्छतः।

मुनेर्दृक्पथमाजग्मू रुदत्यो दुःखिताङ्गनाः।।
कथाः सर्वस्वनाशस्य निवेद्यामूर्महात्मने।
ब्रूहि नः किन्नु कर्तव्यमित्यपृच्छन् सगद्गदम्।।
हस्तेन निर्दिशन्नूर्ध्वं नभः पर्यश्रुलोचनः।।
सोऽब्रवीत् प्रार्थ्यतामीशो बिभीतास्मान्न चान्यतः।। 35.28-30

एक बार धान के खेत की मेड़ पर पैदल चलते हुए मुनि के दृष्टिपथ में रोती हुई दुखी स्त्रियाँ आ गईं। उन्होंने अपना सर्वस्व नष्ट हो जाने का कथा मुनि को सुनाई और फिर गद्गद स्वर में पूछा कि बताइये हम क्या करें। गाँधी जी की आँखों में आँसू भर आये, उन्होंने हाथ से ऊपर आकाश की ओर संकेत किया, फिर बोले – ईश्वर से प्रार्थना करो, केवल उसी से डरो और किसी से नहीं।)

गाँधी जी के निर्भता के संदेश को कवि ने हृदयंगम किया है।

भीता एकाकिनो यूयमिति स्पष्टं भवद्विरा।
न स्वयंसेवकः क्वापि बिभीयादेककोऽपि सन्।।
यद्वा भवत्वसौ नैव कदापि नमयेच्छिरः।
भयापमानयोर्नैव तथा परवशो भवेत्।।
ग्रामलोकोयुक्तेषु कर्मस्वेव व्यवस्यत।
तथा सङ्गच्छत भ्रातृभावेन सह मुस्लिमैः।।
न हि दण्डप्रहारेण विजेतुं शक्यते परः।
परं तु प्रेमभावेन सुजेयः स भविष्यति।। 37.34-37

(आप लोगों की बात सुन कर मैं समझ गया कि आप लोग अकेले होने से डर रहे हैं। स्वयंसेवक को अकेले होने पर भी डरना कभी नहीं चाहिये। चाहे जो भी हो, वह भय और अपमान से कभी सिर न झुकाये। न कभी परवश हो। गाँव के लोगों के लिये जो उपादेय कर्म हों उनमें आप लोग लगे रहें। मुसलमानों को अपना भाई मान कर उनसे मिलते रहें। शत्रु को डंडे के प्रहार से नहीं जीता जा सका। प्रेम भाव से वह आसानी से जेय हो जाता है।)

द्रष्टुकामा भवन्तश्चेद् भारतं निजरूपतः।
श्वपाकस्य कुटीरे तद् ग्रामस्य द्रष्टुमर्हथ।।
ग्रामाणां सप्तलक्षाणि तादृशां सन्ति भारते।
तत्र जीवन्ति दीनानामष्टात्रिंशच्च कोटयः।।
पश्येद्यः कोऽपि युष्माकं यदि ग्रामान् यदृच्छया।
स तेषां दर्शनान्नूनं मोहितो न भविष्यति।।
न स्वर्गीयप्रदेशास्ते बभूवुर्जातुचित् पुरा।
इदानीं तु भवन्त्येते परं कच्चरराशयः।।
नासीत् तेषां दशा पूर्वमीदृशीति ब्रवीम्यहम्।
स्वदीर्घानुभवादेव नैतिहासिकवर्णनात्।।

आसेतोरातुषाराद्रिं भारते पर्यटंश्चिरात्।
अद्राक्षं मानुषव्यक्तीरेता निष्प्रभलोचनाः।
अत्रैव भारतं दृश्यं नगरेषु न दृश्यते।
अत्र नीचकुटीरेषु मलराशिभिरावृतः।। 40.44-50

(यदि आप लोग भारत को वास्तविक रूप में देखना चाहते हैं, तो गाँव में भंगी की कुटिया में उसे देख सकते हैं। भारत में सात लाख गाँव इस तरह के हैं, जिनमें अड़तीस करोड़ दीन जन रहते हैं। आप लोगों में से कोई अपनी इच्छा से ऐसा गाँव देखने चला जाये, तो देख कर मोहित तो नहीं ही होगा। पहले भी ये गाँव कोई स्वर्गीय प्रदेश न थे, पर अब तो ये कचरे के ढ़ेर बनते जा रहे हैं। अपने दीर्घ अनुभव के आधार पर मेरा कहना है कि पहले इनकी दशा इतनी बुरी नहीं थी। आसेतुहिमाचल बारत में बहुत समय से पर्यटन करते हुए मैंने मनुष्य की मूर्ति इन लोगों की देखा है जिनकी आँखों की ज्योति बुझी रहती है। भारत इन्हीं निम्नवर्ग के लोगों के मल के ढ़ेर से ढ़के कुटीरों के बीच देखा जा सकता है, नगरों में नहीं।)

भारत के विभाजन से गाँधी जी भीतर ही भीतर टूट गये हैं, उनकी वाणी की वेदना और हताशा को क्षमा देवी ने गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्ति दी है।

निजस्वास्थ्यमनादृत्य जनानार्तान् सिषेविषुः।
भग्नाशो निजगादित्थं क्वचिन्मित्रं प्रशान्तधीः।
भस्मीकृतोऽस्मि यन्नाहं ज्वालाभिर्वेष्टितोऽपि सन्।
किमीशस्य प्रसादोऽयमथवैषा विडम्बना।।
अद्यत्वे भारते हन्त स्थानं मे न हि विद्यते।
पञ्चविंशशतं वर्षाण्युत्सहे नैव जीवितुम्।।
जीवेयं वत्सरौ प्रायो नाधिकं किल कामये।
भारते विप्लवग्रस्ते कथं वा ध्रियतां वपुः।।
अधुना व्यापृते देशे सङ्ग्रामायुधनिर्मितौ।
का गतिर्ग्रामशिल्पानामहिंसाचिह्नरक्षिणाम्।। 43. 19-23

(अपने स्वास्थ्य की परवाह न कर के वे आर्त जनों की सेवा करना चाह रहे थे। उनकी आशाएँ टूट चुकी थीं। फिर भी उन्होंने शांत स्वर में किसी मित्र से कहा – ज्वालाओं से घिर कर मैं जो जल कर राख नहीं हुआ, तो क्या यह ईश्वर की कृपा है या विडंबना है? आह, आज के भारत में मेरे लिये जगह नहीं है। अब मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना नहीं चाहता। मैं बस दो साल और जी लूँ इससे अधिक नहीं चाहता। सारा देश विप्लव से ग्रस्त है। कैसे अपना शरीर

धारे रहूँ? लड़ाई के हथियार बनाये जा रहे हैं, अहिंसा के चिह्नों और ग्राम के शिल्पों की अब क्या बिसात है!)

नाथूराम गोडसे के द्वारा गाँधी जी की हत्या से कवि विचलित है। स्वराज्यविजय में महात्माके निर्वाण का वर्णन करने के बाद कवि क्षमा राव कहती हैं -

धन्याः किल वयं सर्वे युगेऽस्मिन् प्राप्तसम्भवाः।
चरन्तः क्ष्मातलं तस्य पावितं पादरेणुभिः।।
परस्सहस्रवर्षोर्ध्वं स्मरिष्यन्ति जनाः किल।
महात्मानमिमं गान्धिं जनांश्च समकालिकान्।।
स महापुरुषो लोकैः पूजितः सकलप्रियः।
निजघ्ने देशजेनेति भारतस्य त्रपाकरम्।।
तत्रापि हिन्दुनैकेन हिन्दुष्वपि महत्तमे।
उद्यतो हस्त इत्येष कलङ्को वागगोचोरः। 54.2-5

(हम सब धन्य हैं, जो इस युग में जन्मे, हम उस धरती पर चल रहे हैं जो उन के (गाँधीजी के) चरणों की धूल से पवित्र हो गई है। महात्मा गाँधी को और उनको समय के लोगों को लोग हजारों वर्षों के बाद भी याद रखेगें। भारत के लिये यह लज्जाजनक है कि उन सब को प्रिय और समस्त लोक में पूजित उन महात्मा को उन्हीं के देश के एक व्यक्ति ने मार डाला। यह सारे हिंदू समाज पर ऐसा कलंक है जिसे शब्दों से कह पाना भी असंभव है।)

भाषा – इस महाकाव्य में क्षमा राव की भाषा पहले से प्रौढ और परिपक्व हुई है। अनेक दुर्लभ अप्रचलित शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है, जैसे अनेडमूक (7.17), डिङ्घिरे (26.34)।

नवशब्दनिर्माण में वे यहाँ पहले से अधिक दक्षता का परिचय देती हैं। राजाङ्गविधिनिर्माणगोष्ठी (कांस्टीट्यूएंट एसेंबली) नादवर्धकयन्त्र (माइक के लिये, 16.11) लवपुरी (लाहोर के लिये 40.34) आदि नये शब्द उन्होंने बनाये हैं। कतिपय अपाणिनीय प्रयोग भी किये हैं। जैसे स्वराज्यविजय 42.1 में छन्दोनुरोध से वैतण्डिक के स्थान पर वितण्डक लिखा है ऐसा लगता है। छन्द के निर्वाह के लिये ही वे रहीम को कहीं रहिम कर देती हैं, और करीम को करिम तो, रामधुन को रामधुन् कर देती हैं, पर छंद में सही बैठ जाने पर रामधुन की धुन लौटा देती हैं। पर इस रामधुन् की गूँज ने उनकी कविता में मिठास भर दी है -

प्रार्थनादिवसे षष्ठे कीर्तनं च व्यधीयत।
रामस्य रहिमस्यापि कृष्णस्य करिमस्य च।।
तथा च रामधुन्गीतं रमणीयमगीयत।
प्रीतिचेता मुनिस्तस्मात् तदुद्दिश्याब्रवीत् तदा।।

श्रावं श्रावमिदं रामधुन्गीतं सुमनोहरम्।
नवखाल्याः शुभालोकं प्रत्यक्षीकृतवानहम्।।
अगीयत हि तत्रैतद् भजनं प्रार्थनाङ्गणे।
ग्रामाद् ग्राममटंश्चापि जगौ रामधुनं जनः।। स्वराजविजय, 42.2-5

(छठे प्रार्थना दिवस पर राम और रहीम तथा कृष्ण और करीम के भजनों का कीर्तन किया गया। मुनि (गाँधीजी) ने इससे प्रसन्नचित्त हो कर इस भजन को लेकर कहा – इस रामधुन के सुमनोहर गीत को सुन सुन कर नोआखाली में शुभ आलोक मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। तब फिर प्रार्थना के मैदान में यह गीत गाया गया। गाँधी जी एक गाँव से दूसरे गाँव का अटन करते हुए इस रामधुन का गायन करते रहे।)

सूक्तियाँ –

क्षमा देवी की अन्य रचनाओं की तरह इस महाकाव्य में पदे पदे विचारप्रधान तथा जीवनदर्शन से संवलित सूक्तियाँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ -

तस्करा अपि विस्रम्भान्मिथः स्निह्यन्ति कारणात्।
लुप्तविश्वासमित्रास्तु विद्विषन्ति परस्परम्।। स्वराज्यविजय, 15.13

(चोर भी विश्वास के कारण एक दूसरे पर स्नेह करने लगते हैं। मित्र भी विश्वास का लोप हो जाने पर एक दूसरे से द्वेष करने लगते हैं।)

<u>निष्कर्ष</u>

गाँधीजी पर क्षमादेवी की महाकाव्यत्रयी संस्कृत साहित्य में अभिनव सोपानसरणि का निर्माण है। एक तो कवि ने गाँधी जी के युग और समाज तथा संघर्ष को प्रत्यक्ष देखा, जाना, समझा और परखा है। दूसरे स्वाधीनता संग्राम और गांधीजी के चरित्र के प्रति गहरी आस्था से भी वह प्रेरित है। गाँधी चरित्र पर यह महाकाव्यत्रयी यथार्थबोध तथा भाषा की सहजता के कारण उल्लेखनीय है।

---000---

अध्याय 4

क्षमादेवी का कथासंसार : पद्यात्मक आख्यान

कहानी या कथा की विधा क्षमादेवी के लिये सहजसाध्य रही। *सत्याग्रहगीता* के प्रणयन के साथ वे स्वाधीनतासंग्राम से जुड़ी हुई कहानियाँ भी लिखती रहीं। *कथापञ्चकम्* में श्रमाराव की साहित्यिक यात्रा ने एक नया मोड़ लिया। उन्होंने विधा तो पाश्चात्त्य साहित्य की कहानी (शार्ट स्टोरी) को चुना, पर उसका माध्यम गद्य न हो कर पद्य था। *सत्याग्रहगीता* के लेखन से क्षमाराव ने समझ लिया होगा कि उनके लिये अनुष्टुप् छंद सहज माध्यम है। कथापञ्चकम् में निम्नलिखित पाँच कहानियाँ संकलित हैं –

बालिकोद्वाहसङ्कटम्
गिरिजायाः प्रतिज्ञा
हरिसिंहः
दन्तकेयूरम्
असूयिनी

ये कहानियाँ संस्कृत में अछूती संभावनाएँ ले कर आती हैं। क्षमा राव पाँचों कहानियों को इसके पहले अंग्रेजी में लिख चुकी थीं, तथा इनमें से तीन अंग्रेजी की पत्रिकाओं में छप भी चुकी थीं। संस्कृत रूपांतर की पूर्णाहुति क्षमा देवी ने 12.7.1932 के दिन की तथा 1933ई. में कथापञ्चकम् नाम से ये पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गईं।

कथापञ्चकम् पर प्रकाशित समीक्षाओं में *हिंदू* (मद्रास) ने करुणा के निरूपण के लिये इसकी सराहना की, *टाइम्स आफ इंडिया* ने इसकी चित्ताकर्षक और प्रवाहपूर्ण शैली तथा सामाजिक और पारिवारिक जीवन के चित्रण के लिये प्रशंसा की।[1]

बालिकोद्वाहसङ्कटम् नामक पहली कहानी एक कुलीन विधवा पार्वती के जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत करती है। पति की मृत्यु के पश्चात् नवयौवना रूपवती पार्वती अपने ससुराल में तिरस्कृत और धिक्कृत जीवन बिताती हुई दासी की भाँति रह रही है। उसके माता पिता भी गुजर गये हैं। कहानी का अंत अत्यंत विषादजनक स्थिति में आकस्मिक रूप से होता है।

[1] पंडिता क्षमा राव एक साहित्यिक मूल्यांकन, पृ. 272

पार्वती एक युवक के प्रेमपाश में बँध कर उसके साथ भाग कर पूना चली जाती है, पर अपने प्रेमी के पास रहते हुए वह पापबोध से त्रस्त हो जाती है, उसे बिना बताये वापस ससुराल लौटती है, उस घर में उसका पाला हुआ कुत्ता उसे पहचान कर उसका हाथ चाटने लगता है, उसका देवर जो बालक है, उसके आगे गोद में चढ़ने लगता है, पर ससुराल के लोग पार्वती को कुतिया की तरह दुत्कार कर बाहर निकाल देते हैं। कहानी का आकस्मिक अंत यहीं हो जाता है।

गिरिजायाः प्रतिज्ञा नामक दूसरी कहानी की नायिका गिरिजा एक वृद्ध कुलांगना है। वह यौवन में ही विधवा हो गई थी, उसका बेटा भी मारा जा चुका है। वह अपने बेटे की स्मृति में डूबी रहती है। गिरिजा अपने बेटे के हत्यारे से प्रतिशोध लेने के लिये मन ही मन सुलगती रहती है। इसके बचपन की बातें याद करती है। किस तरह इसी घर में उसके युवा पुत्र का शव लाया गया था।

गिरिजा ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि वह अपने पुत्र के हत्यारे को समाप्त कर के प्रतिशोध पूरा करेगी।

एक दिन जेल से भागा कोई कैदी उसके घर के आगे आ कर, थक कर चूर हो कर गिर पड़ता है। उसके आगे गिड़गिड़ा कर घर के भीतर छिपा देने की प्रार्थना करता है। जेल के कर्मचारी उसके पीछे लगे हैं। उसके बार बार प्रार्थना कर के और जेल में भोगी अपनी यातनाओं के बारे में बताने पर करुणार्द्र हो कर गिरिजा उसे घर के पिछवाड़े में रस्सी के सहारे उतार कर कुए की दीवार में बने क्रोड (खोह) में छिपा देती है। जेल के कर्मचारी गाँव के सरपंच के साथ आते हैं, उसरा सारा घर छान डालते हैं, भागा हुआ कैदी नहीं मिलता। जाते हुए वे उसे बताते हैं कि भागा हुआ कैदी उसी के बेटे का हत्यारा है। गिरजा सोचती रह जाती है कि अभी भी वह उन लोगों को बता दे कि कैदी कुए में छिपा हुआ है। फिर सोचती है कि इससे तो उसकी प्रतिज्ञा पूरी न होगी। कैदी कुए में दीवार के क्रोड में छिपा उससे पूछता है कि क्या उसे खोजने वाले चले गये। गिरिजा उसे बताती है कि तुम मेरे बेटे के हत्यारे हो -- यह मैं जान गई। हत्यारा उसे हत्या के समय की पूरी घटना सुनाते हुए बताता है कि उसने जान बूझ कर हत्या नहीं की थी, वह यह भी बताता है कि उसके घर में बूढ़ी माँ अकेली और असहाय उसकी दिन रात प्रतीक्षा कर रही है।

गिरिजा भयंकर अंतर्द्वंद्व से गुजरती है, पर अंततः कैदी को सकुशल जाने देती है। भावों के घात प्रत्याघात, सौजन्य, हिंस्रवृत्ति व प्रतिशोधभावना पर मनुष्यता की विजय - इन सब की दृष्टि से यह एक प्रभावशाली कहानी है।

इस कहानी में ग्राम जीवन का तथा एक एकाकिनी स्त्री की दिनचर्या का सूक्ष्म चित्रण संवेदनाप्रवण दृष्टि से क्षमादेवी ने किया है।

आकुमारवियोगात् सा स्थिता निर्विण्णमानसा।
सुमृष्टान्नं परित्यज्य प्रियं पुत्रस्य यत्पुरा।।
समाप्तभोजना साऽथ कार्यशेषोद्यताऽभवत्।
घटस्थाल्यादिपात्राणि मार्जयन्ती गृहाद्बहिः।।
गोमयेनोपलिम्पन्ती भूतलं पूर्वशोधितम्।
उद्धरन्ती जलं कूपान्निशायां पाकसिद्धये।। 2.24-26

(बेटे से बिछड़ जाने के बाद से वह ऐसे ही अनमनी रहती थी। बेटे को जो पक्वान्न अच्छे लगते थे, वे उसने छोड़ दिये थे। किसी तरह भोजन का काम निपटा कर वह बचे काम निपटाने में लग गई। घर के बाहर उसने थाली व घट आदि बर्तन धोये, पहले से साफ किये फर्श पर गोबर लीपा, फिर रात के भोजन को लिये कुए से जल लाने के लिये चल दी)।

तीसरी कहानी की घटनास्थली *हरिसिंहः* सौराष्ट्र में कमलापुर के पास का एक गाँव है। गाँव का शासक (जमींदार) मानसिंह खलनायक है, जिसके अत्याचारों व आतंक से गाँव से लोग थर्राते हैं। इस कहानी में जमींदार के द्वारा किये जाने वाले नृशंस कृत्यों का रोंगटे खड़ा कर देने वाला वर्णन है। गाँव के दुर्भिक्ष और भुखमरी तथा जनता की असहायता का वर्णन भी करुणाजनक है।

इसी गाँव के सिवान पर हरिंसिंह अपनी माँ के साथ रहता है। उसकी माँ को पति ने छोड़ दिया है। हरिंसिंह के नायकत्व में चार युवक जमींदार के प्रतिरोध के लिये उठ खड़े होते हैं। वे अत्याचारी मानसिंह की हत्या की योजना बना लेते हैं। हरिसिंह मानसिंह की हत्या करने जाने को है। घर में बंदूक के कारतूस उसने छिपा कर रखे थे, उन्हें ढूँढता हुआ वह माँ की एक संदूक खोल डालता है, जिस पर माँ सदा ताला लगा कर रखती है। उस संदूक में उसे मानसिंह का अपनी माँ के साथ बहुत पुराना फोटोग्राफ मिलता है, माँ के नाम लिखे हुए मानसिंह के अनेक पत्र भी। हरिसिंह का माथा घूम जाता है। वह समझ जाता है कि वह मानसिंह का ही बेटा है। इसी समय माँ आ जाती है, उसके आग्रह करने पर वह पिछली सारी बातें उसे बताती है। मानसिंह ने मंदिर में उसके साथ विवाह किया था, पर अपने परिवार के बड़े-बूढ़ों के कहने में आकर उसे बाद में ठुकरा दिया। मानसिंह का रथ इसी समय घर के सामने से निकलता है। हरिसिंह खिड़की से निशाना साध कर मानसिंह पर गोली दाग देता है।

कहानी में घटनाओं की आकस्मिकता कौतूहल बढ़ाने वाली है। हरिसिंह के अंतर्द्वंद्व और वेदना का चित्रण, उसक माँ की सहनशीलता तथा

दुःख, वेदना और कर्म के निर्णय में अवसान के कारण यह एक प्रभावशाली कहानी बन गई है।

चौथी कहानी *दन्तकेयूरम्* में गणु एक मछुआरा है। वह बंबई में मछुआरों की बस्ती में रहता है। राधा उसकी पत्नी है। होली के दिन गणु शरीब पी कर जुआ खेलता है। उसकी प्रतिद्वंद्वी आखिरी दाव के रूप में एक बाजूबंद निकालता है। बाजूबंद को देख कर गणु का मुख फक्क पड़ जाता है। यह उसकी पत्नी राधा का है। इसी समय रंगु राधा को ले कर अश्लील बातें करता है। गणु को संदेह होता है कि राधा के रंगु के साथ अनुचित संबंध है। वह नशे में लड़खड़ाता हुआ घर आ कर राधा से झगड़ता है और आवेग के साथ धक्का दे कर उसे पटक देता है, जिससे राधा का सिर फट जाता है। इसी समय उसका बेटा एक पोटली ले कर आता है, जिसमें राधा के द्वारा गणु के लिये खरीदी गई पगड़ी है। पगड़ी के साथ में मिले पत्र से गणु को पता चलता है कि उसकी मनचाही पगड़ी खरीदने के लिये राधा ने अपना बाजूबंद बेच दिया था। वह पछताता हुआ भीतर आता है, पर तब कर राधा संसार को छोड़ कर जा चुकी होती है।

राधा के प्रेम और निश्छलता तथा उसके बरक्स मछुआरे की मूर्खता का चित्रण कहानी में विडंबना के बोध को तीखा बना देता है। मछुआरों की बस्ती का चित्रण क्षमा देवी ने यथार्थदृष्टि से किया है। मुंबई में रहते हुए क्षमा देवी ने मछुआरों की बस्ती के जो दृश्य देखे होंगे वे इसमें साकार हो गये हैं। संभवतः इस कहानी की परिकल्पना उन्होंने कैथरीन मेंसफील्ड की *दि गिफ्ट आफ मागी* नामक कहानी से ली हो। तथापि उन्होंने कहानी का जिस विडंबना, विसंगति और त्रासदी में समापन किया है, वह उन्हें एक साहसी कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

पाँचवी व अंतिम कहानी असूयिनी एक बाँझ स्त्री रेवा के जीवन पर आधारित है। रेविका भी एक मछुआरे की पत्नी है। बाँझ होने कारण उसे अपनी सास के ताने सुनने पड़ते हैं, सास के उत्पीडन से वह संत्रस्त है। तांत्रिक की बातों आ कर वह पड़ोसिन के बेटे, जिसको वह बहुत चाहती है, की बलि देने का ठान लेती है। वह अन्न में धतूरा मिला कर पड़ोसिन के बच्चे को खिलाने के लिये ले जाती है, पर जब वहाँ पहुँचती है तो देखती है कि पड़ोसन पछाड़ का कर रो रही है। पता चलता है कि उसके दोनों बेटों में बड़ा तो प्लेग से कुछ देर पहले ही चल बसा, दूसरा भी मरणासन्न है। रेवा जहरीला अन्न फैंक कर पागलों की तरह चिल्लाती हुई वहाँ से भागती है। उसे लगता है कि पड़ोसिन के बेटों की हत्यारी वही है।

अनुष्टुप् छंद को क्षमा राव ने कथाकथन का सहज माध्यम बना कर प्रवाह और सहजता का आद्यंत निर्वाह तो किया ही है, भाषा के सौष्ठव,

सौंदर्यबोध और वर्णनकला का भी उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। पहली कहानी में विधवा नायिका का वर्णन करती हुई वे कहती हैं –

श्वेतवासाः सुशीर्षा सा सुकुमारा च मोहिनी।
येशुक्रिस्तस्य मातेव विरेजे मधुराकृतिः। 1.12

(श्वेत वस्त्र पहने हुए, सुंदर मस्तक वाली, सुकुमार, मोहिनी वह पार्वती ईसा मसीह की माता के समान मधुर आकृति वाली सुशोभित हो रही थी।)

पाँचों कहानियाँ कुल मिला कर 832 अनुष्टुप् छंदों में गूँथी गईं हैं। पाश्चात्त्य विधा को भारतीयता के संस्कारों से जोड़ते हुए क्षमा राव ने हर कहानी के माध्यम से किसी न किसी जीवनमूल्य को प्रतिष्ठापित किया है और इसे स्पष्टताया अभिधा में कहने के लिये पुष्पिकाओं का प्रयोग किया है। पाँचों कहानियों की पुष्पिकाएँ जिनमें कहानी के निचोड़ के रूप में उसकी अंतर्वस्तु प्रक्षेपित की गई है, इस प्रकार हैं –

द्वेषेऽपि भ्राजते प्रेमा।
(द्वेष के भीतर भी प्रेम चमकता है।)
क्लिष्टस्यापि सुजातस्य सौन्दर्यं नापयास्यति।
(कुलीन जन का क्लेश में पड़ने पर भी सौंदर्य नहीं जाता)
लोकसेवाप्रसक्तानां जगदेव कुटुम्बकम्।
(लोक सेवा में लगे लोगों के लिये संसार ही कुटंब है।)
मद्यपस्य करे रत्नं न चिरायावतिष्ठते।
(शराबी के हाथ में रत्न बहुत देर नहीं टिकता।)
कुलीनापि करोत्येव साहसं परिहिंसिता।
(कुलीन स्त्री भी सताई जाने पर साहस कर बैठती है।)
यह पुस्तक क्षमा राव ने अपनी बेटी लीला को समर्पित की है।

इतिहास बोध और प्रगतिशील दृष्टि इन कहानियों को संस्कृत के कथासाहित्य से अलग करती है। पहली कहानी में ही वे बताती हैं कि शारदा एक्ट लागू नहीं हुआ है, और नायिका पार्वती का विवाह उसके बचपन में ही कर दिया गया है (1.5)।[1]

क्षमा राव ने नगरों या आधुनिक वस्तुओं के नामों का आवश्यकतानुसार संस्कृतीकरण किया है। महाराष्ट्र के धुले शहर को उन्होंने धुल्लिकापुर (1.2) कहा है। डोलिकागीतम् कहारों का गीत (5.71) है।

[1] अतिबाल्यदशायां सा गुरुभिः पर्यणाय्यत।
शारदीयविधानात् प्राग् बाल्योद्वाहनिरोधकात्।। 1.5

अपाणिनीय या दुरूह शब्दों के प्रयोग भी इस संकलन में मिलते हैं। जैसे – शक्यति (1.23), वालधि (1.25), वार्षुधि (1.91) आदि।

ग्रामज्योतिः

ग्रामज्योतिः का प्रकाशन क्षमा राव के निधन के पश्चात् 1954 में हुआ, तथापि इसकी भावभूमि सत्याग्रहगीता के अत्यंत निकट है। वस्तुतः सत्याग्रहगीता की रचना के समय क्षमा राव ने गुजरात व मुंबई के अंचलों का जो दौरा किया, और वहाँ सामान्यजनों में स्वराज के भाव का जो साक्षात्कार किया, उसको *ग्रामज्योतिः* की कहानियों में उन्होंने व्यक्त किया है।

ग्रामज्योतिः में तीन मयूख हैं, जिनमें *रेवायाः कथा, कटुविपाकः* तथा *वीरभा* शीर्षक से तीन कथाएँ अनुष्टुप् छंद में निबद्ध हैं। तीनों कथाओं के आरंभ में उनके ध्येयवाक्य दिये गये हैं, जो क्रमशः ये हैं –

देशाभ्युदयसक्तानां तृणाय धनसम्पदः।

(देश की उन्नति के लिये काम में लगे लोगों के लिये संपदाएँ तिनके के बराबर हैं।)

परसेवी निजद्वेषी कुलमृत्युर्न संशयः।

(दूसरे की सेवा करने वाला तथा अपनों से द्वेष करने वाला कुल के लिये मृत्यु ही है।)

दुर्जनोऽपि सतां सङ्गाद् भवत्येव हि सज्जनः।

(दुर्जन भी सज्जनों के संग से सज्जन बन ही जाता है।)

तीनों कथाएँ क्षमा राव के निजी अनुभवों पर आधारित हैं। सत्याग्रहगीता लिखते समय उन्होंने सारे देश में स्वाधीनता आंदोलन और जनजागरण का एक अभूतपूर्व उपक्रम देखा तथा गाँव गाँव में जनसामान्य में नई चेतना उन्हें हिलोर लेती लगी। विशेष रूप से ग्राम की स्त्रियों में यह चेतना उन्हें प्रतिफलित गुई थी। *ग्रामज्योतिः* के तीनों कथानक भारतीय ग्राम के आजादी की लड़ाई के समय के बदलते परिदृश्य को साकार करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि तीनों कथाएँ स्त्रीप्रधान हैं, तीनों के कथानक का ताना-बाना महिलाचरित्रों को ले कर बुना गया है। सभी स्त्रीचरित्रों में उदात्तता तथा देशसेवा की भावना है।

पहली कहानी *रेवायाः कथा* में रेवा बाग्दोलि जनपद में स्वर्णपुर ग्राम के एक किसान की गृहिणी है। किसानों ने लगान देने से इंकार कर दिया है, और सारा गाँव असहयोग आंदोलन में संलग्न है। विदेशी शासन की नींव हिल रही है।

लगान की वसूली करने वाले कारिंदों के आतंक से गाँव के किसान गाँव खाली कर के जा चुके हैं। रेवा एक देशभक्त स्त्री है। वह आजादी की लड़ाई में सम्मिलित है। असहयोग आंदोलन में संलग्नता के कारण उसका युवा

पुत्र जेल में बंद है। लगान वसूली के लिये सरकार के लोग आने वाले हैं, रेवा घर का सारा सामान इकट्ठा कर के बाँट रही है। वह घर की अनेक वस्तुएँ सेवक को देती जाती है, फिर सेवक से साथ ले जाने के लिये घर का बचा हुआ सामान गाड़ी में रखवाती है। विदेशी वस्त्र व विदेशी वस्तुएँ वह नष्ट कर देना चाहती है। तभी ग्रामणी (गाँव का सरपंच) वहाँ आ जाता है। वह सरकार का पिट्ठू है। वह रेवा पर ताने कसता है, तथा लगान न देने के कारण उसे धमकाता है। रेवा के द्वारा उसे दिये गये प्रत्युत्तर में कवि ने स्वराज्य आंदोलन के मूलमंत्र का प्रकट कर दिया है –

बलसर्वस्वमाधाय धान्यस्याप्यन्तिमं कणम्।
व्ययीकृत्यापि नः कार्यान्न भवेम पराङ्मुखाः।।
जन्मसिद्धाधिकारोऽयं स्वातन्त्र्यं नाम देहिनाम्।
वयं च तत् पुनः प्राप्य शीर्षमूर्ध्वं वहामहे।। 1.116-17

(अपनी समूची शक्ति लगा देगें, धान के अंतिम कण तक का व्यय कर देंगें, पर हम कार्य से मुँह नहीं मोड़ेगें। स्वातंत्र्य प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। हम उसे फिर से हासिल कर के अपना मस्तक ऊपर उठा सकेगें।)

क्षमा देवी महाराष्ट्र में रह कर ये कथाएँ लिख रही हैं। यह स्वाभावक ही है कि रेवा की घोषणा में तिलक के स्वराज्य की घोषणा अनुगुंजित हो।

सरपंच उसे और भी ऊँच नीच समझाने लगता है, रेवा अपने निश्चय पर अटल है। इसी समय देशसेवकों को सिपाहियों के द्वारा पीटे जाने और उनके चीत्कार के स्वर सुन पड़ते हैं। तभी एक खद्दरधारी युवक आता है, जो रेवा को बताता है कि जनपद के अध्यक्ष ने लगान का विरोध करने के कारण आपके पुत्र की बहुत अधिक पिटाई की है। सरपंच यह कह कर चला जाता है कि तुम लोगों का तो इसी तरह सर्वनाश हो जायेगा। उसकी बात सुन कर घर में ताला लगा कर रेवा अपने घायल बेटे को देखने के लिये चल पड़ती है। मार्ग में उसे कारिंदे मिलते हैं, जो लगान न देने के कारण धमकाते हुए उसे गालियाँ देते हैं। रेवा लगान न देने का अपना दृढ निश्चय उन्हें सुनाती है।

वह अपने घायल पुत्र को पालकी में उठवा रही है, तभी दूर से आग सी लपटें दिखाई देती है। लोग चिल्लाते हैं कि रेवा का घर को आग लगा दी गई। रेवा तेजी से आग बुझाने के लिये जाना चाहती है, उसके साथी उसे रोकते हैं और कहते हैं कि घर तो भस्म हो चुका। रेवा अपने अंत्यज सेवक से कहती है कि पालकी अपने घर ले चलो और हमें शरण दो।

पूरे कथानक में विदेशी शासन की दमननीति, विभीषिका और संत्रास तथा एक अकेली स्त्री का उसके आगे खड़े रहने का दुर्दम्य साहस का प्रभावशाली चित्रण है।

कटुविपाकः जालाल प्रदेश में मणिपुर गाँव की कथा है। इस गाँव के लोग भी सत्याग्रह आंदोलन में शामिल हैं, पर यहाँ का दुराग्रही और स्वार्थी सरपंच भी अंग्रेजी शासन के साथ है। उसका बेटा खुलेआम सत्याग्रहियों के साथ आंदोलन में सम्मिलित है। सरपंच ने नाराज हो कर उसे घर से निकाल दिया है। सरपंच की पत्नी और बेटी दोनों उसे बताये बिना चुपचाप देशभक्तों का साथ दे रही हैं।

लगान न देने पर सताये गये किसानों के पलायन के कारण सूने गाँव का चित्र बहुत मार्मिक है।

शून्ये चतुष्पथे वापि वीथ्यां वा सुविदूरतः।
न पुमान् न च नारी वा भवति स्माक्षिगोचरः।।
चाण्डालकुक्कुरा ये च व्यलम्बन्तान्नकाङ्क्षिणः।
पल्लिकायां पुरा तस्यां नादृश्यन्ताद्य तेऽपि वा।।
चुकूजुश्चटका ये च कूपाभ्यर्णे पुरा किल।
डिड्यिरे ते बहिर्ग्रामात् सत्याग्रहपथानुगाः।।
धान्यक्षेत्राणि शून्यानि विलसन्त्यर्करोचिषा।
निःशब्दं कथयामासुः कृषीवलपलायनम्।। 2.35-38

(सूने चौराहे या गली में दूर दूर तक न कोई पुरुष दिखता था, न स्त्री। पहले चांडालों के जो कुत्ते अन्न के लालच में पल्ली में घूमते रहते थे, वे भी अब नज़र नहीं आ रहे थे। कुए के पास जो पक्षी पहले कूजा करते थे, वे उड़ कर गाँव के बाहर जा चुके थे, जैसे सत्याग्रहियों का साथ देने निकल पड़े हों। धान के सूने खेत धूप में चमक रहे थे। वे मौन किसानों के पलायन की कहानी कह रहे थे।)

सरपंच की बेटी जेल में बंद देशसेविकाओं के लिये सामग्री ले कर जाती है।

उस दिन सरपंच के पुत्र को न्यायालयमें सजा सुनाई जाने वाली है। सरपंच की पत्नी व्यग्र हो कर अखबार की प्रतीक्षा कर रही है। उसकी बेटी धुले कपड़े ले कर देशसेविकाओं के शिविर जाने को तैयार हो रही है। तभी सरपंच हाथ में अखबार लिये आता है और बेटे के लिये बुरा भला कहता हुआ बताता है कि उसे दो साल के कारावास की सजा सुनाई गई है। वह पत्नी को भी ताने देता है। वह शराबखानों पर धरना देने वाली स्त्रियों की हँसी उड़ाता है। उसे मालूम नहीं है कि उसकी अपनी पत्नी भी उन स्त्रियों में शामिल है। उसकी बेटी उससे बहस करती है। तभी उसका एक नौकर आ कर बताता है कि देशसेवकों ने आपके ताड़ के पेड़ काट दिये हैं, ताकि ताड़ी न बनाई जा सके। सरपंच देशसेवकों को गालियाँ देता हुआ डंडा उठा कर उन्हें पीटने के लिये निकल पड़ता है। दोपहर हो जाती है, उसका कहीं पता नहीं। उसकी बेटी

नित्य की भाँति देशसेविकाओं के शिविर में धुले कपड़े पहुँचाने के लिये चली जाती है। देशसेविकाएँ कलारी की दूकानों पर धरना दे रही है और शराब पीने वालों को रोक रही हैं। सिपाही उन पर डंडे चला रहे हैं। साँझ घिरने लगती है। बेटी घर वापस नहीं लौटी। सरपंच घर आ गया है और प्रसन्न हो कर पत्नी को बताता है कि मैंने ताड़ के पेड़ काटने वालों की अच्छी मरम्मत कर दी है और उन्हें बंद करवा कर आया हूँ। पत्नी कुछ नहीं बोलती, सरपंच उसे फिर बताता है कि आज महिला शिविर पर भी अवस्कंद (रेड) पड़ने वाला है, पूना से इसके लिये सिपाही आ गये हैं, वे इन दुष्ट और पाखंडी देशसेविकाओं को पकड़ कर ले जायेंगें। फिर वह बेटी के बारे में पूछता है कि वह है कहाँ। पत्नी बेटी के बारे में सचाई छिपाती हुई कह देती है कि वह रसोई में काम कर रही है। सरपंच नहाने चला जाता है, उसकी पत्नी व्याकुल हो कर बेटी की प्रतीक्षा कर रही है। नहा कर आने के बाद सरपंच चिल्लाता हुआ पूछता है कि इतनी देकर से तुम लोग रसोई में क्या कर रही हो, भोजन क्यों नहीं बना, पत्नी जल्दी जल्दी भोजन बनाने लगती है। तभी एक खादीधारी देशसेवक युवक वहाँ आता है। सरपंच उसका मजाक उड़ाने लगता है। युवक कहता है कि मैं तो यह बताने आया हूँ कि शराबखाने के सामने धरना देती महिलाओं पर लाठियों और बंदूक के कुंदों से जब सैनिकों ने प्रहार किये, तो आपकी बेटी भी उसमें घायल हो गई है। सरपंच की पत्नी यह सुन कर रोने लगती है। युवक बताता है कि बच्ची की हालत गंभीर है, वह यह रात भी काट पायेगी या नहीं इसमें संदेह है। सरपंच पत्नी को गालियाँ देने लगता है। दूर से पीटे जाते देशसेवकों के हाहाकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। कहानी यहीं समाप्त हो जाती है।

तीसरी कथा *वीरभा* में वीरभा एक साहसी और बलिष्ठ स्त्री है। घर में घुसे लुटेरे से वह अकेली लड़ कर उसे भगा चुकी है। उसका एक मात्र बेटा देश सेवा के लिये लड़ते हुए पुलिस के द्वारा मारा जा चुका है। इस बेटे की पत्नी – वीरभा की बहू - का पहले ही निधन हो चुका है, पर उसकी एक संतान – वीरभा का पौत्र -- वीरभा के पास ही है। इस शिशु को वह पाल रही है। बोर्सद ग्राम में पुलिस ने देशसेवकों व देशसेविकाओं पर अमानुषिक अत्याचार किये हैं। वीरभा उन का प्रतीकार कैसे किया जाये – यह सोच रही है। ग्रामीण महिलाएँ सामने आने से हिचकिचा रही हैं। वीरभा उन्हें समझाती है। गाँव का सरपंच शुकनास उससे बहस करता है और कहता है कि स्त्रियों को घर का कामकाज देखना चाहिये, इस तरह के लड़ाई झगड़ों में नहीं पड़ना चाहिये। वीरभा उससे दो टूक शब्दों में कहती है –

अहिंसासत्यरूपेण वयं बद्धा व्रतेन हि ।

धर्मैकनिष्ठता चापि शिक्षिताः स्मो महात्मना।
दीपद्वयमिदं मोहतमोविध्वंसकारणम्।
स्वातन्त्र्यरूपमोक्षस्य पदवीं दर्शयिष्यति।। 3.46-47

शुकनास उसकी हँसी उड़ता हुआ चला जाता है। वीरभा महिलाओं के आगे आंदोलन की रूपरेखा बताती है। वह गली गली में जाती है और महिलाओं में उत्साह जगाती है। इस बीच उसके घर से सारी गायें चोरी हो जाती हैं, उसके पति को लगान न देने के कारण पीटा जाता है, और वह अर्धमृत स्थिति में घर लाया गया है। पति की परिचर्या कर के पोते को पीठ पर बाँध कर वीरभा जुलूस झंडा फहराने के लिये निकल पड़ती है। झंडा ले कर जुलूस में चल रही महिलाओं पर लाठी जार्ज होता है। लाठी के प्रहार झेलती हुई वीरभा अपने पौत्र को बचाती है, फिर मूर्च्छित हो कर गिर पड़ती है। होश आने पर वह देखती है कि उसका पोता उसकी पीठ पर नहीं है। घर वापस आ कर वीरभा अपने पोते, चोरी की गईं गायों के विषय में सोचती रहती है। तभी एक सिपाही उसके पोते को ले कर आता है और बताता है कि जब आप लाठियों के प्रहार झेल रही थी, और झंडे को बचाने की कोशिश कर रही थीं, तो मैंने आपकी पीठ की जाली खोल कर इस बच्चे को ले लिया था।

कहानी स्वतंत्रतासंग्राम के दौरान तेजी से बदलती स्थियों का चक्र प्रस्तुत करती है। एक ओर गाँव का मुखिया अंग्रेज सरकार का पिट्ठू है, दूसरी ओर निरीह देशभक्त स्त्रियों पर बर्बरता के साथ लाठी चलाते सिपाहियों में कुछ ऐसे भी हैं, जो मन ही मन इन स्त्रियों से सहानुभूति रखते हैं। ऐसा ही एक सिपाही अपनी नौकरी खतरे में डाल कर न केवल वीरभा के पौत्र के प्राण बचाता है, बच्चे को घर लौटाने भी आता है।

क्षमा राव की ये तीनों कहानियाँ तीसरे चौथे दशक के भारतीय ग्रामों के दस्तावेज हैं।

वातावरण के निर्माण में कवि की दक्षता सभी कथानकों में प्रकट गुई है। कटुविपाकः कहानी में सरपंच देशसेवकों को पीटने के लिये निकल पडा है। उसकी पत्नी गवाक्ष से देखती है कि गाँव में सन्नाटा पसरा हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

निष्प्रभं भीषणाकारं दृश्यते स्म वणिक्पथम्।
उत्खातमिव भूगर्भात् पुराणं ध्वस्तमन्दिरम्।।
लोकानां जयनिर्घोषो दूरतः प्रतिगर्जताम्।
अवर्धयत भूयोऽपि प्रचण्डत्वं परिस्थितेः।। 2.97-98

बनियों की गली फीकी और भीषणाकार दिख रही थी, जैसे खोद कर भूगर्भ से बाहर निकाला गया पुराना ध्वस्त मंदिर हो। दूर से गरजते लोगों

का जयघोष सुनाई दे रहा था, जो स्थिति की प्रंडता को और भी बढ़ा रहा था।)

सूक्तियाँ -- तीनों कहानियों में खरे जीवनानुभव को प्रस्तुत करने वाले सुभाषित इन्हें स्मरणीय बनाते हैं। उदाहरणार्थ –

मुखद्वेषकृते नासाच्छेदनं नहि युज्यते। (1.107)

(किसी का मुँह अच्छा न लगता हो, तो उसकी नाक नहीं काट दी जाती।

सुजातः को नरो मृष्येदपमानं सुयोषिताम्। (1.110)

(कौन भले घर का पुरुष ऐसा होगा, तो भद्र महिलाओं का अपमान सहन करेगा।)

इस संकलन में भी अनेक नये शब्द कथाकर्त्री ने गढ़े हैं जैसे - भूकर (लगान), शाणप्रसेवक (बोरा, जूट का बैग), धूमवर्तिका (बीड़ी, 2.73), अस्त्रकुण्ठाग्र (बंदूक का कुंदा) त्रपुदीप (लालटेन,3.81) आदि, जब कि संदूक के लिये पेटी शब्द का ही प्रयोग उन्होंने किया है (1.30,65,70)। ऋजीष (1.87) आदि दुर्लभ शब्दों का प्रयोग भी क्षमा ने इसमें किया है। किङ्कार्यविधुरा जैसा सुंदर मुहावरा भी उन्होंने गढ़ा है (2.148)। कवि क्षमादेवी ने भाषा को आभाणकों व मुहावरों से समृद्ध बनाया है। एक उदाहरण देखें –

तेनैव हि कृता शय्या शेतां तदुपरि स्वयम् (2.162)- जैसी सेज उसने बिछाई उस पर वही सोयेगा।

अध्याय 5
क्षमादेवी का कथासंसार - कहानियाँ

कथामुक्तावली क्षमा राव के द्वारा गद्य में लिखी गई पंद्रह कहानियों का संग्रह है। गद्य अत्यंत परिष्कृत और प्रौढ, शैली सरस और कथाएँ आकर्षक हैं। सभी कहानियाँ आधुनिक जीवन को विषय बना कर लिखी गईं हैं। संस्कृत में समकालिकता का ऐसा निर्वाह बहुत कम मिलता है।

कथामुक्तावली का प्राक्कथन अंग्रेजी में के.एम. पणिक्कर ने लिखा है। उन्होंने कहानियों की सराहना करते हुए कहा है कि ये कहानियाँ देश के विभिन्न भागों में रहने वाले सामान्य जनों के जीवन का निरूपण करती हैं। विभिन्न स्थलों के वर्णन अत्यंत मनोहारी हैं। पणिक्कर ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की है कि पंडिता (क्षमा राव) ने अपने इन वर्णनों में प्राचीन कवियों की शास्त्रीय शैली का अनुकरण किया है तथा अपनी कवित्व शक्ति का भी परिचय दिया है। विभिन्न स्थलों के वर्णन लयात्मक तथा सरल गद्य में शैली के जिस परिष्कार के साथ प्रस्तुत किये गये हैं, वह केवल संस्कृत में ही संभव है। पणिक्कर जी ने क्षमा राव की कहानियों में कथानक, संवादरचना तथा चरित्रचित्रण की भी सराहना करते हुए कहा है कि ये कहानियाँ आधुनिक भारतीय साहित्य में उत्कृष्ट स्थान के योग्य हैं। वे कथामुक्तावली को साहित्यक गुणवत्ता, परिष्कार, भावों की उदात्तता, तथा आद्यंत अनुगुंजित देशभक्ति के अंतर्निहित स्वर की दृष्टि से एक आधुनिक क्लासिक भी मानते हैं।

कहानियों की विषयवस्तु

पहली कहानी *प्रेमरसोद्रेकः* है। यह काश्मीर की पृष्ठभूमि पर रची गई है। काश्मीर की वादियों, वहाँ के निम्नवग्रीय लोगों का रहनसहन, पश्मीने के शाल बुनना, भेड़ों के पहाड़ पर चलते रेवड़, जिन्हें संस्कृत में गड्डारिका प्रवाह कहा गया है – इन के रंगबिरंगे चित्र कहानी के फलक पर क्षमादेवी ने अंकित किये हैं।

अस्मा तेरह वर्ष की चंचल किशोरी है। वह अपने दादा दादी के साथ रहती है। उसकी माँ का निधन हो चुका है। उसके नाना नानी ने उसे बहुत लाड़ प्यार से पाला है। हामिदा मरते समय अपनी बेटी को उन्हें सौंप गई। भेड़ चराती हुई अस्मा, पश्मीने का शाल बुनते कारीगर इन सबके बीच कहानी आगे बढ़ती हुई है, और उस संधिक्षण पर ठहर जाती है जहाँ गग्लु अस्मा के घर आता है। वह अस्मा को देख कर उसपर मोहित हो जाता है। गग्लु के साथ बातचीत करते करते अस्मा के नाना नानी जान जाते हैं कि वह तो उन्हींका दामाद है, जिसने उनकी बेटी हामिदा को बाँझ समझ कर छोड़ दिया था। हामिदा ने अंतिम साँस लेते हुए उनसे यह वचन लिया था कि उसकी बेटी अस्मा को वे ऐसे अन्यायी पिता को कभी न सौंपेगें। सौदागर अपने सास ससुर को नहीं पहचान पाता, और न ही उसे यह पता है कि पत्नी को छोड़ देने के बाद वह उसी की बेटी को जन्म दे चुकी थी। अपनी ही बेटी को पत्नी के रूप में साथ ले जाने को तत्पर उसका प्रस्ताव अस्मा के नाना-नानी ठुकरा देते हैं। तब सौदागर कहता है बच्ची को देख कर उसका मन स्नेह से भर गया है, वह उसे अपनी बेटी की ही तरह रखेगा, वे उसे उसके साथ भेज दें। वह बच्ची को साथ भेजने के लिये मुँहमाँगी कीमत देने को तैयार है। नाना नानी का मन डोलने लगता है। तभी अस्मा दृढ स्वर में कहती है कि वह अपने नाना और नानी को छोड़ कर कहीं नहीं जायेगी। हताश हो कर सौदागर यह कहते हुए चल देता है कि मेरी बीबी बाँझ न होती, तो आज ऐसी ही एक बेटी मेरे भी होती।

विडंबना और व्यंग्य, स्नेह और माधुर्य, सौंदर्य और प्रेम -- सभी का समवाय क्षमा राव ने इस कहानी में कर दिया है। किशोरी अस्मा की चंचलता और नटखटपन जितना रमणीय रूप में चित्रित है, उतना ही उसका साहस और अपने आपको बेचे जाने का विरोध भी। यह कहानी जयशंकर प्रसाद की *दासी* नामक कहानी की फीरोजा का स्मरण करा देती है। अस्मा और फीरोजा दोनों सौंदर्य तथा साहस की प्रतिमूर्ति हैं।

इस कहानी में तथा इस संग्रह की अन्य अनेक कहानियों में क्षमादेवी ने प्रत्यभिज्ञा (पहचान) और अप्रत्यभिज्ञा के अभिप्रायों का सटीक उपयोग किया है। गुग्लु सास-ससुर और बेटी को नहीं पहचानता, अस्मा अपने पिता को नहीं पहचानती, जब कि उसके नाना नानी गुग्लु को पहचानते लेते हैं।

दूसरी कहानी *तापसस्य पारितोषिकम्* एक विवाहिता स्त्री ऊर्मिला की मनोवेदना और अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करती है। ऊर्मिला के पति असाध्य रोग से ग्रस्त हैं, और चिकित्सक के कथन के अनुसार कितना और वे जियेंगे यह कहा नहीं जा सकता। ऊर्मिला प्राणपण से उनकी सेवा कर रही है, उनकी स्थिति देखकर वह रोती रहती है, और एक तपस्वी के द्वारा दी गई कटार से अपना

स्वयं का जीवन समाप्त कर देना चाहती है। सारी समृद्धि के बीच ऊर्मिला के अकलेपन का चित्रण मार्मिक है। कहानी के अंत में कोई अभ्यागत उसके घर में आता है, जो उसे समझाता है कि जीवन परमात्मा की दी हुई धरोहर है, उसे समाप्त करने का किसी मनुष्य को अधिकार नही हैं। ऊर्मिला आत्मघात का निर्णय त्याग देती है। तभी उसके पति आँखें खोलते हैं। यहीं कहानी समाप्त हो जाती है।

ऊर्मिला की वेदना व अंतर्द्वंद्व के चित्रण में कथाकर्त्री के व्यक्तिजीवन का प्रतिबिंब भी देखा जा सकता है। क्षमा देवी के पति राघवेंद्र राव भी उनके जीवनकाल में ही चल बसे थे। आयु में क्षमा उनसे बहुत छोटी थीं। ऊर्मिला की कातरता, पतिपरायणता और अवसाद में उनके निजी जीवन की रेखाएँ छिपी हुई हैं।

ऊर्मिला को कथाकर्त्री ने एक विभाजित व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है। घर में आया अभ्यागत उस के अपने भीतर चलती उधेड़बुन के एक पक्ष का प्रतिनिधि है। दूसरी ओर तपस्वी की दी हुई कटार है, जो उसे अपना प्राणांत कर देने के लिये उकसाती है।

पूरी कथा में व्याप्त अवसाद और करुणा के अनुरूप वातावरण का निर्माण ऋतुचक्र के आवर्तन और कालचक्र के विवर्तन के निरूपण के द्वारा किया गया है। उदाहरणार्थ -

मासोऽयं कार्तिकः। कोङ्कणावनिमण्डलमण्डनायमाने सुरमणीयपर्वतीयप्रदेशे महाबलेश्वरनाम्नि द्वित्रिदिनानि सहसाऽऽसीत् समुत्थितो झञ्झावातः प्रचण्डः। अकालेऽपि सकडकडाशब्दमतिभीषण-सौदामनी ताटकारुणरोषविडम्बिनी क्षेत्रेषु व्यापृतान् स्त्रीपुरुषसमूहान् सन्त्रास्य वाताघातपाषाणपातनं विधाय परःशतानुच्चोच्चद्रुमान् सरभसं विधूय निपात्य च समुन्मूलं वन्यसत्त्वान् भयानकेन स्वनेन भाययित्वा गोमेषादीन् पशून् क्षणाद् भस्मीकृत्य कृतकृत्येव विध्वंसकर्मण्यात्मानमपि व्यनाशयत्। ततश्चानवरतं नैकघटिका यावत् सतडतडाशब्दं गुटिकास्थूलवर्षोपलवृष्टि-मारब्धवान् मघवा। मध्याह्नेऽद्य तु वृष्टिप्रवाहोऽयं मन्दीभूय शनैः शनैर्व्यरमत। सायंसमये चास्तं जिगमिषुर्भगवान् भास्करः सिन्दूरस्नातया वरुणदिशा तरुण्या सन्ध्ययाऽरुणीकृतवाहनः पश्चिमसागराभ्यन्तरं प्रविष्टः। प्रदोषस्य क्षणिकदीप्त्याऽभूदम्बरतलमरुणायितम्। ततश्च क्षिप्रमेव रजनीं प्रतीक्षमाणो रजनीनाथः सार्धकलो रमणीमाश्लिष्य प्रफुल्लास्येति तां चुम्बन् विमलगगनमश्चक आस्त। परममसौ प्रमोदामृतरसधाराबिन्दुमात्रस्यन्दनेनापि नान्वगृह्णान्मन्दिरमेकं विषादान्धकारयुतम्। तथाहि शयनागारे कस्यचित् तरुणस्यायुर्दशावर्तिस्तमोमयकोणे निहितस्य दीपकस्य तनुवर्तिरिव कम्पमानाऽऽसीत्। तत्र जीर्णधूसरभित्तिषु चित्रविचित्रविच्छायच्छायानिचयेन

गाढनिशब्दतयाऽरण्यस्य गृहाद् बहिश्च मण्डूकानामनवरतेनारटनेन समवर्धत भीषणगभीरता शयनागारस्य। (कथामुक्तावली, पृ. 7)

यहाँ प्रचंड झंझावात, बिजली का बारबार कड़कना, मूसलाधार बौछार, सूर्यास्त, साँझ का झुटपुटा, विषाद का अँधेरा, शयनागार में दीपक का भभकना, आयुरूपी दीपशिखा का काँपना, मेढ़कों का अनवरत टर्राना इन सब से कहानी के अवसाद का गहन वातावरण निर्मित होता है। इसीप्रकार -

अथ कुट्टिमसन्नद्धं शयनागारं पितृकाननस्य भीषणतामभजत्। प्रतिक्षणं कोणस्थो दीपो निर्वापं प्रत्यासदत्। गन्धवाहो गृहाद् बहिः ससूत्कारं क्वचिदाक्रोशत्, क्वचिदुच्चैरवहद्। (पृ. 8)

हवा के बहने में रोने की ध्वनि, निर्वाणोन्मुख दीपक भी विषाद के बोध को तीखा बनाते हैं। कहानी में उर्मिला की उधेड़बुन इन सब के बीच और जटिल होती जाती है -

केन घोरपातकपङ्ककल्केन कलङ्कितोऽस्मि येन मम जीवनसार-माजिहीर्षुरसि। भाविदुस्सहापदमुत्प्रेक्षमाणां मां वराकीं कोकीमिव कोकाद्विरहितामुत्तरोत्तरं तारस्वरै रुदतीं द्रष्टुं कथं त्वं सहसे। (पृ.8)

तीसरी कहानी *परित्यक्ता* भी काश्मीर की पृष्ठभूमि में रची गई है। कथा का आख्यायक और उसका साथी जो टूरिस्ट गाइड है, आँधी और वर्षा के बीच एक संपन्न व्यक्ति के घर में आश्रय लेते हैं। यह संपन्न पुरुष अतिथियों के स्वागत को तत्पर है, केवल तपस्वियों और संन्यासियों से उसे चिढ़ है, उनका प्रवेश उसके घर में निषिद्ध है। क्षमा राव ने घर के वातावरण का सूक्ष्म चित्रण करते हुए भाषा के सौंदर्य को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है।बिजली की झकाझक में जगमगाता भवन झिलमिलाती रेशम से ढ़का सा किसी विलक्षण आख्यायिका की पृष्ठभूमि लगने लगता है।

प्रवेशद्वारे पलितकूर्चेन स्थविरदौवारिकेण गम्भीराकृतिना सादरं प्रवेशितौ प्राङ्गणमारोहाव गृहाभ्यतरप्रघणम्। अथ उपत्यकाया प्रफुल्लसान्द्रखस्खसक्षेत्राणामतिमनोहरोऽयमालोको मे लोचने प्रामोदयत्तराम्। सौदामन्या झगझगायमानाया दीप्त्या कोणितवर्णकौशेयाच्छादितेव सा स्थली प्राचकासीत्। विजने वर्तमानमिदं मन्दिरं कस्याश्चित् विलक्षणाख्यायिकायाः पृष्ठभूमिरिव प्रत्यभान्मे। अपर्याप्तप्रकाशो निवासोऽयं गृहस्वामिनोऽन्धकाराभिरुचिमसूचयत्। परितो मन्दिरं व्यलसन् नानाविधविटपिनः सम्प्रफुल्लकुसुमसौरभाढ्या विविधफलभारावनताश्च। बहिःस्थालोके रमणीयेऽपि निवासस्यान्तर्गतनिरानन्दनैराश्यादिवैषम्यात् तत्र प्रविष्टमानोऽहं कयाऽपि खिन्नतयाऽभिभूतोऽभवम्। विलीनाऽऽसीत् क्वचित् कापि गुह्यता क्वचित् कोऽपि विडम्बनापारुष्यान्वितो विमोहश्च। (परित्यक्ता, पृ. 15)

बाहर वारिश तेज हो जाती है। तभी कोई तपस्विनी वहाँ आती है, जिसके साथ प्राम या एक हाथ से खींची जाने वाली गाड़ी में अपाहिज बालक है। इस घर के नियम के अनुसार तपस्विनी को वहाँ आश्रय नहीं मिलता। वह अपने भाग्य को कोसती हुई वहाँ से चल देती है। आख्यायक को तपस्विनी किसी अभिजात कुल की वधू लगती है, वह सोचता है कि पता नहीं किन परिस्थितियों में उसे दारुण दुःख झेलना पड़ रहा है। वह किसी ट्रेजेडी की पात्र लगने लगती है। बूढ़ा चौकीदार तपस्विनी को दुत्कार कर हटा देता है, आख्यायक से रहा नहीं जाता, वह बाहर आ कर तपस्विनी से पूछता है अब आप कहाँ जायेगीं। तपस्विनी धैर्य के साथ उत्तर देती है – विधाता की सृष्टि बहुत विशाल है कहीं न कहीं आसरा मिल ही जायेगा। उसके पीले पड़ गये आँधी में चोट खाये क्षुधा और वेदना से बदरंग मुख पर अच्छे कुल को सूचित करने वाली कोई दिव्य छटा चमक रही थी। आख्यायक उसे देख कर सोचता है कि इस बिचारी को किसी दुःखप्रधान संसारनाटक में दुःखी पात्र की भूमिका मिली है। (तस्याः पिङ्गलवर्णे वाताहते चानने क्षुद्वेदनाविच्छाये सद्वंशशंसिनी कापि दिव्यच्छटाऽद्योततताम्। विचिन्ततं च मया यदनया तपस्विन्या कस्मिन्नपि दुःखप्रधानसंसारनाटके दुःखिपात्र्याभिनेत्र्या भाव्यमिति। पृ.16)

कथा के आख्यायाक या मैं का साथी तपस्विनी की दुःखभरी गाथा सुनाने लगता है। वह उसे पहचानता है। वह पंजाब के सबसे एक बहुत संपन्न रईस की पत्नी रही है। निस्संतान होने के कारण उसे ससुराल में प्रतारित किया जाता था, पर पति उस पर प्रेम रखते थे। वे उसे काश्मीर घुमाने ले जाते। यहीं उसका परिचय एक पाखंडी योगी से हुआ। वह योगी के बहकावे में आ गई। पति को बिना बताये वह योगी के द्वारा निर्दिष्ट गुप्त स्थान पर चली गई। अपने अपने सारे गहने उसे दे दिये, पर ठीक उस समय जब योगी उसे अपनी वासना का शिकार बनाने जा रहा था, वह बच कर उस स्थान से भाग निकली। कई दिनों बाद जब काश्मीर में वह पति के ठिकाने पर पहुँची, तो पति उसे दुराचारिणी मान कर उस स्थान में ताला लगा तक जा चुके थे। इस स्त्री ने अपने प्राणांत करना चाहा, पर तभी उसे पता चला कि वह माँ बनने वाली है, तो उसके आत्महत्या का विचार त्याग दिया। समय आने पर उसने एक अपाहिज बालक को जन्म दिया, और तब से उस बालक को किसी तरह पाल रही है।

यह कथा सुन कर कहानी का मैं या आख्यायक रात को सो जाता है। भोर होने पर वह और उसका गाइड दोनों देखते हैं कि घर के स्वामी उसी योगिनी और बालक को लेकर घर में आ रहे हैं। रहस्य खुलता है कि

गृहस्वामी ही उस स्त्री के पति हैं, और रात में उन्होंने गाइड के द्वारा कही गई उसकी दुःखभरी कहानी सुन ली है।

चौथी कहानी *मिथ्याग्रहणम्* का विषय संदेह के आधार पर होने वाली ग़लतफ़हमी है। कहानी बंबई के माझगाँव नामक स्थान से आरंभ होती है अमीना और सरला दो सखियाँ हैं। दोनों बचपन से साथ रही हैं। अब बड़ी हो चुकी हैं। अमीना का विवाह एक बड़े रईस के साथ होने वाला है। उसने अपने होने वाले पति को देखा नहीं है। वह मानती है पिता ने जहाँ संबंध कर दिया, उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। सरला उससे असहमत है। अमीना प्रेमविवाह को पश्चिमी देशों का रिवाज बताती है और उसे अच्छा नहीं समझती। अमीना को ससुराल में अपार वैभव तो मिलता है, पर अटूट एशो आराम के बीच पति का प्रेम नहीं। इधर सरला का विवाह भी हो जाता है, उसका पति संपन्न नहीं है, पर उसे बहुत चाहता है। संयोगवश जहाँ अमीना की हवेली है, उसी के पास वह भी एक छोटा सा घर ले लेता है। इस तरह दोनों सखियों में फिर मेल मिलाप शुरू हो जाता है। अमीना के एक के बाद एक कई संतानें होती जाती हैं। पर पति की ओर से उसकी उपेक्षा भी बढ़ती जाती है, पति हामिद देर रात घर आता है। अमीना रात को हामिद को सरला के ही घर की ओर से आते देखती है, तो उसे संदेह होता है कि हामिद के सरला के साथ अनुचित संबंध हैं। सरला को ले कर उसका मन खट्टा हो जाता है। दोनों सखियों का मिलना जुलना धीरे धीरे समाप्त होने लगा है और उनमें बातचीत तक बंद हो जाती है। फिर हामिद गंभीर रोग से ग्रसित हो कर प्राण छोड़ देता है। सरला अमीना के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिये उसके घर आती है, अमीना उससे बात नहीं करती। तभी पड़ौस की कोई युवती आ कर हामिद के शव से लिपट कर फूट फूट कर रोने लगती है। तब अमीना को पता चलता है कि वह सरला की पड़ोसिन है, और हामिद के संबंध सरला के साथ नहीं, इसी स्त्री से रहे हैं। अमीना की ग़लतफहमी दूर होती है, पर बहुत विलंब से।

पाँचवी कहानी का शीर्षक *वृत्तशंसिच्छत्रम्* (बीती बात बताने वाला छाता) है। कहानी की शुरूआत इस तरह होती है कि राजदुर्ग के पास के रय्या नाम के एक गाँव में एक पुरोहित जी के घर सास अपने दामाद के साथ शतरंज खेल रही है। सास का नाम है इंदिरा। वह अठाईस वर्ष की विधवा है, और छोटे से एक गाँव के पुरोहित की बेटी है। दामाद विद्वान् है और प्राचीन पांडुलिपयों का अध्येता। पर शतरंज में वह अपनी सास से कमजोर है।

इंदिरा की बेटी मीरा का विवाह अनुपम के साथ हुआ है। मीरा बारह वर्ष की है। अनुपम अपनी सास पर मुग्ध है। वह इंदिरा के रूप की प्रशंसा करता हुआ कह बैठता है कि काश, आप ही मेरी जीवन सहचरी होतीं!...इंदिरा उसकी बात सुन कर अवाक् रह जाती है। अनुपम उसके आगे

अपना प्रणयनिवेदन करने लगता है। इंदिरा उसे लताड़ती है और कहती है कि इतने विद्वान् व्यक्ति हो कर ऐसे अनुचित और अनैतिक संबंध की बात आपके मन में कैसे आ गई? मैं तो आपकी माँ के समान हूँ! अनुपम अपने स्खलन पर पछताता है। रात को वह भीतर किसी स्त्री के रोने की स्वर सुनता है। इंदिरा अपने बेटी मीरा के भविष्य को ले कर चिंता के कारण रो रही है। अनुपम अपने आपको धिक्कारता हुआ उसी रात में ससुराल छोड़ कर चल देता है।

सुबह होती है। अनुपम का कहीं पता नहीं चलता। गाँव के लोग उसे खोजते रहते हैं। दिन पर दिन बीतते चले जाते हैं। पंद्रह दिन बाद गाँव के किसी व्यक्ति को तालाब के किनारे झाड़ियों में पड़ा हुआ अनुपम का छाता मिलता है। छाते पर अनुपम का नाम कढ़ा हुआ है। इंदिरा और परिवार के लोग सोच लेते हैं कि दामाद ने तालाब में डूब कर प्राण दे दिये। इस बीच इंदिरा के पिता पुरोहित जी का भी निधन हो जाता है। इंदिरा अपनी बेटी मीरा को विधवा मान कर उसे सँभाले रहती है।

इसके कई वर्ष बाद कहानी का फलक पूना के खड़की नाम गाँव में खुलता है। एक तपस्वी देखता है कि स्त्री नदी में डूबती हुई चिल्ला रही है। वह नदी में कूद कर स्त्री को बाहर निकाल लाता है। तपस्वी का नाम त्यागराज है। वह स्त्री को अपनी कुटी से पश्मीने का शाल ला कर उसे शरीर ढ़कने के लिये देता है। स्त्री का नाम रामी है। वह एक विधवा है, जो पास के विधवा आश्रम में रहती है। वह अपने साथ की अन्य विधवाओं के साथ विधवाश्रम लौट जाती है। दो तीन दिन बाद वह तपस्वी का शाल लौटाने आती है, दोनों बातचीत होती है, तपस्वी पुरानी पोथियों के अध्ययन में लगा रहता है। विधवा रामी भी पढ़ाई करने की इच्छा प्रकट करती है, इस तरह दोनों के बीच प्रणय का पौधा अंकुरित होने लगता है। कथाकर्त्री यहाँ यह रहस्य खोल देती है कि यह तपस्वी वास्तव में अनुपम है और विधवा कही गई रामी उसी की पत्नी मीरा। मीरा अब पूर्ण युवती है, न तो वह अपने पति को पहचान पाती है और न ही संन्यासी बना हुआ अनुपम उसे पहचान पाता है। पर नये परिचय के साथ दोनों एक दूसरे से परिणयसूत्र में बँध जाने का निर्णय ले लेते हैं। रामी तपस्वी या अनुपम से यह कह कर अपने गाँव चली जाती है कि पंद्रह दिन बाद मैं आऊँगी और हम लोग विवाह कर लेगें। मीरा गाँव पहुँच कर अपनी माँ को अपने प्रणयप्रसंग की बात बता देती है, और तपस्वी के साथ विवाह करने का अपना निश्चय भी।

उसके जाने के बाद अनुपम एक बार फिर भयावह अंतर्द्वंद्व में पड़ जाता है। उसे लगता है कि उकी पहली पत्नी मीरा जीवित होगी, और दूसरा विवाह करने के पहले उसे उसकी खोज खबर ले लेना चाहिये। वह पता लगाने के लिये राजदुर्ग आता है, वहाँ के मंदिर में रुक जाता है। इंदिरा अपने

गाँव से इस मंदिर में आती है, वह अनुपम को तपस्वी के वेश में भी पहचान लेती है। वह अनुपम से सारी बात सुन कर वह समझ जाती है कि उसकी बेटी मीरा अपने को विधवा मान कर जिस तपस्वी से विवाह करने का सोच रही है, वह तो मीरा का पति अनुपम ही है। आनंद के अतिरेक में इंदिरा को ठिठोली सूझती है। वह अनुपम से घर चलने को कहती है। अनुपम फिर एक बार उधेड़बुन में पड़ जाता है। वह बहाना बनाता है कि पास के एक घर में उसने अपना सामान रख दिया है, उसे ले कर वह पहुँच रहा है। इंदिरा घर पहुँच कर मीरा को सारी बात न बता कर इतना ही बताती है कि उसके पति अनुपम का एक मित्र मिलने आ रहा है। उससे अनुपम का पता चल जायेगा ऐसी संभावना है।

अनुपम रय्या गाँव में पहुँचता है। पर इंदिरा के घर तक पहुँच कर भी वह फिर से अंतर्द्वंद्व में पड़ जाता है, और एक बार पहली पत्नी को छोड़ा, अब विधवा रामी को धोखा नहीं दूँगा – यह निर्णय कर के इंदिरा से बिना मिले व बिना कुछ सूचना दिये वह वापस खड़की गाँव लौट जाता है। इधर अनुपम के न आने से इंदिरा अपनी नासमझी पर पछताती है कि क्यों मीरा और अनुपम दोनों को चकित कर देने के विचार से उसने मीरा को सारी बात नहीं बताई और अनुपम को भी साथ ले कर नहीं आई। वह बेटी को ले कर खड़की गाँव पहुँचती है, तो देखती है कि तपस्वी त्यागराज या अनुपम की कुटी खाली है। इंदिरा विषाद से जड रह जाती है, मीरा या रामी ही उसे समझाती हुई कहती है कि मेरे पति ही कदाचित् जीवित हैं, तो इस अनुचित संबंध से मैं बच गई। इंदिरा मन ही मन अनुतप्त होती रहती है। मीरा तपस्वी की कुटी बंद कर के बाहर निकलने को होती है, तभी द्वार के पीछे टँगे छाते पर उसकी दृष्टि जाती है। वह यह कह कर छाता उठा लेती है कि उनकी स्मृति के रूप में मैं इसे अपने पास रखूँगी। दोनों माँ बेटी वापस लौट रही हैं, तभी अनुपम की फिर उनसे एक बार भेंट हो जाती है। इंदिरा बेटी का हाथ अनुपम के हाथ में देते हुए कहती है कि अठारह वर्ष बाद तुम दोनों इस छाते के कारण मिल गये।

हैमसमाधिः नामक छठी कहानी कश्मीर की पृष्ठभूमि पर है। किष्टिवार नाम के गाँव में एक ग्रामीण का कुटीर है। इसके बाहर हिमा नामकी युवती एक पेड़ की वेदिका पर बैठी सृष्टि का सौंदर्य निहार रही है। वह अपने पति अंबुज कोखोजने के लिये अपनी माँ के साथ आई हुई है। श्रीनगर में एक तपस्वी ने उनसे कह दिया है कि जितना अधिक आयास होगा उतना ही पुण्य होगा। हिमा यात्रा के कष्ट को पुण्यलाभ मान कर आनंदित है, पर उसकी माँ इस यात्रा में थक गई है, और चिढ़ कर बार बार बेटी को निरर्थक भटकाव

छोड़ देने के लिये बार बार कोच रही है। वह कहती है -- 'शैत्याच्छकलीभूतास्मि।'

हिमा यात्रा पर आगे बढ़ते जाने के निश्चय पर अडिग है। यह कहानी क्षमा देवी की घुमक्कड़वृत्ति की भी झलक देती है। पर्यटक के रूप में उनके अनुभव भी इसमें अनुस्यूत हो गये हैं। वर्णन देखिये –

अथ मातृवचनमाकर्ण्य कथञ्चित् स्मिताननाऽप्रहतोत्साहा तरुणी तूष्णीकं वितस्थे। अथ परेद्यवि भानूदयात् प्रागेव विसृज्य शय्यां विना जननीं प्रस्थातुं प्रावर्तत हिमा। ह्रस्वकायस्त्रिविष्टपदेशीयः कश्चित् तस्याः पोटट्लिकां वहन् स्कन्धेन तत्पृष्ठतोऽचलत्। प्रस्थानसमये मातरमियं समाह्वयत् तदा तस्यै प्रदायाशीर्वादं वृद्धा तूष्णीं तस्थौ। परस्तात् कुटीरस्य द्वारदेहल्याः प्रयान्तीं कन्यामादृष्टिपथगतां प्रेक्षमाणा स्थितवती।
पृ. 43

(माँ की बात सुन कर किसी तरह मुख पर मुस्कान बनाये रख कर वह तरुणी चुप रही। उसका यात्रा का उत्साह कम नहीं हुआ था। फिर अगले दिन सूर्योदय के पहले ही हिमा बिस्तर से उठी, और माँ के बिना ही चलने को तैयार हो गई। एक बौना तिब्बती उसकी पोटली कंधे पर उठा कर उसके पीछे पीछे चल रहा था। चलते समय उसने माँ को पुकारा। बुढ़िया ने उसे आशीर्वाद दिया और चुपचाप खड़ी रही। फिर कुटीर की देहली लाँघ कर बाहर जाती बेटी को वह तब तक देखती रही, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गई।)

हिमा के मन में तपस्वी का यह कथन गूँजता रहता है –

यथा यथाधिकायासः पुण्यवृद्धिस्तथा तथा।
पुण्यं हि सात्त्विकं नूनमशक्यमपि साधयेत्।।

(जितना क्लेश उठाओगे, उतना ही पुण्य पाओगे। पुण्य सात्त्विक वस्तु है, जिससे असंभव बात भी सध जाती है।)

वह सोचती है तीर्थयात्रा, अधिक से अधिक कष्ट झेलने से जो पुण्य मिलेगा उसके द्वारा कदाचित् वह अपने पति को फिर से पा सकेगी। कहानी प्रत्यभिज्ञा और स्मृति इन दो अभिप्रायों के ताने बाने मे गुँथी हुई है।

हिमा के पति अंबुज कई वर्षों पहले अपने पिता को खोजने इधर आये थे, तब से उनका पता नहीं है। कहानी तपस्वियों के वचनों की आवृत्ति व हिमालय की ढ़लानों पर रिपटती हुई तथा उपत्यकाओं पर आरोहण करती हुई आगे बढ़ती है, शेषनाग सरोवर हो कर हिमा अमरनाथ यात्रा में

सम्मिलित हो जाती है। योगियों व सिद्धों के वर्णन कहानी में रहस्यबोध की वृद्धि करते हैं।

हिमा एक गुफा में किसी शव को देखती है। वह समझती है कि यह उसी के पति का शव है। वह आजीवन यहीं रह कर तपस्या में जीवन बिता देने का निर्णय कर लेती है। गुफा से बाहर आ कर एक तापस युवक से उसकी भेंट होती है, जो हिमे हिमे कह कर उसे पुकारता है और उसे पहचान कर आलिंगन पाश में उसे बाँध लेता है। वह हिमा को विश्वास दिलाता है कि तुम पहचान नहीं रही हो, मैं तुम्हारा पति अंबुज हूँ। हिमा चकित हो कर फिर उसी गुफा की ओर चल देती है जहाँ उसने अंबुज जैसे व्यक्ति का शव देखा था। अंबुज और हिमा का साथी योगी भी उसके पीछे पीछे गुफा में आते हैं। अंबुज पहचान लेता है कि शव तो उसके पिता का है, जिन्हें वह पिछले पाँच वर्षों से हिमालय की इन कंदराओं में खोज रहा है।

संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास ग्रंथ के सातवें खंड में गद्य साहित्य विषयक पंचम अध्याय में कलानाथ शास्त्री ने इस कथा की गिनती दुःखांत कहानियों में कर ली है। वे *कथामुक्तावली* की कहानियों के विषय में लिखते हैं – 'इनमें से कुछ दुःखान्त प्रेमकथाएँ हैं, जहाँ प्रेमी-प्रेमिका का मिलन बर्फ से दब कर मृत्यु के समय ही होता है (हैमसमाधिः)।'[1] वस्तुतः *हैमसमाधिः* के विषय में शास्त्री की धारणा सही नहीं है।

यह कहानी क्षमा देवी की धार्मिक आस्थाओं, योगियों व साधकों पर विश्वास तथा अलौकिक शक्तियों के निर्वचन की परिचायक है। बाणभट्ट की *कादंबरी* के *महाश्वेतावृत्तांत* की छाया भी इसमें है।

सातवीं कहानी *मायाजालम्* का कथानक अनूठा ही है। *हैमसमाधिः* की तरह यह कहानी भी योगियों और ज्योतिषियों के विश्वास में पगी हुई है। कहानी गुजरात में आबू पहाड़ की सुरम्य घाटियों में बुनी गई है। चार स्त्रियाँ एक स्थान पर मिलती है, जिनका एक दूसरे से परिचय यहीं आ कर होता है। वे एक गूँगे और बहरे ज्योतिषी से अपने बिछड़े प्रेमियों का पता पूछने आईं हैं। वे चारों अपनी अपनी आप बीती सुनाती हैं। चारों आधुनिक विप्रलब्धाएँ हैं, प्रत्येक पुरुष के द्वारा वंचित हुई है। पहली कहानी मुग्धा की है। मुग्धा बताती है कि उसके पिता गुजरात में सागर के किनारे दुमस नाम के गाँव में रहते थे। वे मानते थे कि लड़कियाँ केवल विवाह करने के लिये ही होती हैं, उन्होंने मुग्धा को पढ़ाया लिखाया नहीं, उसका शैशव बीतने पर अनाथाश्रम से सोलह वर्ष के किसी लड़के को वे ले आये, और उसके साथ मुग्धा का वाग्दान कर दिया। मुग्धा की माँ इस बीच नहीं रहीं। इस लड़के से मुग्धा मिलती रही,

[1] पृ. 487

प्रेम बढ़ता रहा। पिता ने अठारह वर्ष का होने पर लड़के को उच्चशिक्षा के लिये विदेश भेज दिया। विदेश जाने पर उसके प्रेमपत्र आते रहे। धीरे धीरे प्रेमपत्र आने कम होते गये, फिर उससे संपर्क टूट गया। उसका कहीं कोई पता न चला।

इतनी कथा सुना कर मुग्धा ने कहा कि तब से मैं एक विधवा की तरह जीवन बिता रह हूँ, फिर भी उसके मिलने की आशा नहीं छोड़ी है।

मुग्धा की कथा समाप्त होने पर शेष तीन स्त्रियों में से मंदा ने 'अमंदशोक के कारण मुद्रित नयन के साथ मंद मंद स्वर में' अपनी आपबीती सुनाई। मंदा की मंद मंद भंगिमाओं को क्षमा देवी ने उसी के अनुरूप भाषा में गूँथा है।[1]

मंदा ने कहा - मैं मोहमयी महानगरी (बंबई) में अपने माता-पिता के साथ रहती थी। मेरी पढ़ाई प्राथमिक कक्षा तक ही हुई, क्यों कि मेरे पिता स्त्रियों को उच्च शिक्षा दिलाने के घोर विरोधी थे। मेरा कोई सामाजिक जीवन न था, घर में बंदिनी की भाँति रहती थी। मेरे अग्रजों के साथ जो मित्र आते थे, उनमें से एक से मेरा परिचय हुआ। वह गौरे रंग का बहुत सुंदर युवक था, आधी दुनिया घूम चुका था, उसके संस्कार पश्चिम के थे, अपने देश की परंपरा का वह घोर विरोधी था, इसीलिये मेरे बड़े भाई लोग उसे बहुत पसंद भी करते थे। मेरे पिता भी उससे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अपने आफिस में उसे नौकरी दे दी। इधर मेरी आयु विवाह के योग्य हो गई थी, मैं देखने में कुरूप थी, कोई युवक मुझ से ब्याह करने को तैयार न था। पर बात ही बात में इस युवक ने ही मेरे पिता के आगे मुझ से विवाह करने के लिये हामी भर दी। मेरे पिता के प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। उन्होंने अपनी संपत्ति का बड़ा भाग मेरे नाम कर दिया और इस युवक को ही उसका मेनेजर बना दिया। फिर मेरा विवाह उस के साथ हो गया। बंबई में ही सागर के तट पर एक छोटे से मकान में हम दोनों रहने लगे। उसने आरंभ में मुझे बहुत प्रेम से रखा, तरह तरह के उपहार लाता, घुमाने ले जाता, क्लब में भी ले जाता। हमारे एक बेटा हुआ। बेटे के होने के बाद उसका जी जैसे मुझ से उचट गया हो। बेटे के लिये भी उसके मन में कोई प्रेम न था, वह दफ्तर से देर से आता, मुझ से उखड़ा उखड़ा सा रहता। एक बार उसने कहा कि उसके पिता बहुत बीमार हैं, और वह उन्हें देखने के लिये जा रहा है। इसके पहले तो उसने कभी अपने पिता की चर्चा ही नहीं की थी, और मैं समझती थी कि उसके न पिता है न माता। वह

---

[1] अथ तिसृष्वन्यतमाङ्गना कृशाङ्गी श्यामवर्णाऽपि प्रियदर्शना सामिपिहितमन्दाक्ष्यमन्दशोकाकुलसमन्दस्वरा मन्दानाम्नी न्यगदत्। पृ. 49

कह कर गया था कि पिता के पास पहुँच कर खबर करूँगा, पर उसके बाद उसका कोई अता पता नहीं चला।

मंदा की कहानी समाप्त होने पर मोहिनी ने अपनी कथा सुनाई। नाम के अनुरूप मोहिनी अत्यंत मोहक रूप वाली थी। उसने कहा – तुम दोनों को तो तुम्हारे पतियों ने धोखा दिया, मैं तो अपनी ही चंचलता और मूर्खता के कारण मारी गई। मैं बड़े रईस की बेटी थी, देखने में सुंदर थी, जो भी देखता, मुझे देखता रह जाता। मुझ से विवाह करने को न जाने कितने ही युवक लालायित थे। पिता ने अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप मोतियों के एक बड़े व्यापारी से मेरा विवाह किया। मेरे पति का कारोबार देश विदेश में फैला हुआ था, तो कारोबार के सिलसिले में वे अक्सर पेरिस जाते। एक बार मैं भी उनके साथ उस अद्‌भुत नगरी में गई।

मोहिनीआगे कहती है - मेरे पति पेरिस के बढ़िया रेस्तराओं में मुझे भोजन कराने ले जाते। भोजन के बाद वे मुझे घर छोड़ कर रात को पता नहीं कहाँ चले जाते। यह विचित्र क्रम कई दिनों तक चलता रहा। एक बार हम रेस्तराँ में भोजन कर रहे थे, तभी कोई पत्रवाहक मेरे पति को एक पत्र दे कर चला गया। मैं बस अभी आया – यह कह मेरे पति हड़बड़ी में उठ कर चल दिये। मैं एक घंटे तक वहाँ उनकी प्रतीक्षा करती रही। रेस्तराँ में लोग आ रहे थे, जा रहे थे, मेरे पति का कहीं पता न था। बिल देने के लिये मैंने अपना पर्स खोला तो देखा कि उसमें तो वेटर को टिप देने तक के लायक पैसे नहीं हैं। मैं घबरा गई।... पास की सीट पर एक भारतीय तरुण बैठा था, मुझे बदहवास देख कर वह मेरे पास आया और पूछा कि क्या मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ। उसने मेरा बिल चुकाया और मुझे घर तक छोड़ा। उसके बाद मेरा उससे परिचय बढ़ता गया, फिर परिचय प्रेम में बदल गया। एक महीने में ही यह स्थिति हो गई कि घर में जो कुछ बहुमूल्य था, वह सब समेट कर साथ ले कर मैं उसके साथ ईज़िप्ट भाग गई। हम दोनों एक दूसरे के प्रेम में डूबे हुए छह महीने तक इजिप्ट के एक गाँव में रहे। वह मुझे बहुत चाहता था, पर उतना ही शंकालु भी था। उसका संदेह हास्यास्पदता की सीमा तक चला जाता था। उस दिन जब वह नहाने गया हुआ था, मैं ने उसे चिढ़ाने के लिये मजाक में मैं किसी के साथ कैरो जा रही हूँ – यह संदेश लिखा और बाहर निकल गई। लौट कर आई तो मेरा सुखमय संसार उजड़ चुका था। अरब नौकर ने बताया कि मालिक बहुत बदहवास हालत में थे और पता नहीं कहाँ चले गये। मैंने उसे खोजने का बहुत प्रयास किया, वह कहीं न मिला। निराश मैं अपने देश लौट आई। मेरे मातापिता इस बीच संसार छोड़ कर जा चुके थे, और पिता मुझे अपनी अपार संपत्ति की एक मात्र वारिस बना गये थे। अब

मेरे पास अटूट संपदा है, पर सुख का एक कण नहीं। प्रेम के बिना जीवन निस्सार है।

अब चारों में आयु में सबसे ज्येष्ठ दया की बारी थी। उसने अपनी कथा सुनाते हुए कहा – मैं एक वेश्या की संतान हूँ। जब मैं सोलह वर्ष की हुई तो मेरी माँ अनेक धनी युवकों के साथ मेरे संसर्ग की व्यवस्था करने लगी। पर मुझे देहव्यापार से घृणा थी। मुझे जब अपने सबसे पहले ग्राहक के पास भेजा जाना था, उसके पहले ही मैं वेश्यालय से भाग गई। मैं एक नगर से दूसरे नगर भटकती रही, अंततः एक दयालु पुजारी मेरी करुण कथा सुन कर पसीज गये और उन्होंने मुझे आश्रय दिया। बेटी की तरह उन्होंने मुझे अपने घर में रखा। दस वर्ष तक मैं उनके साथ सागर के किनारे कोंकण के गाँव में रही। उन्होंने मुझे पढ़ाया लिखाया, पिता का स्नेह दिया। घर में और कोई न था, मेरे धर्मपिता ने मेरा विवाह करने के भी बहुत प्रयास किये, पर यह वेश्या की संतान है यह जानने के बाद मुझे कौन अपनाता? फिर भी उन्हें आशा थी कि मेरा विवाह किसी अच्छे युवक से हो जायेगा। मैं छब्बीस वर्ष की थी, तभी वे चल बसे। मैं पूरी तरह अनाथ हो गई। उनकी स्मृति को लिये उनके मंदिर में पूजा करती मैं एकाकिनी रह रही थी। संध्या का समय था। मैंने एक युवक को सागर तट पर मूर्च्छित देखा। वह कोई व्यापारी था, उसका जहाज तूफान में डूब गया था। उसे देख देख कर मेरे भीतर प्रेम का ज्वार हिलोर लेने लगा। मछुआरों की सहायता से उसे उठवा कर मैं घर तक ले आई। वह बहुत समय तक अर्ध मूर्च्छा में रहा, जब स्वस्थ हुआ भी, तो बहुत कम बोलता था। उसकी स्मृति चली गई थी। पर जैसे जैसे वह मुझे पहचानने लगा, मैंने देखा कि उसकी आँखों में मेरे लिये प्रेम जाग रहा है। मैं रोमांचित थी। फिर मैं उसके साथ रमण करने लगी। एक दिन उसने कहा कि मुझे जाना है, मैं पूछती रही कि कहाँ,उसने कुछ बताया नहीं, मैं उसे रोकती रही... अगले दिन मैंने देखा कि उसकी शय्या खाली है, उसके बाद से मैंने उसे नहीं देखा।

अपनी अपनी कथा एक दूसरे को सुना वे चारों गूँगे और बहरे ज्योतिषी के सामने पहुँची, उन्होंने उसके निर्देशानुसार बकुल के फूलों से अपने अपने प्रेमियों के नाम उसके आगे लिखे। अगले दिन ज्योतिषी को उन नामों पर विचार कर के भविष्यकथन करना था। ज्योतिषी ने उन सारे फूलों को समेट कर उनसे एक पद्य लिख दिया –

पतङ्गो रसमास्वाद्य चतुस्सुमनसां पृथक्।
मायाजाले गृहीतः सन् विमुक्तोऽपि तिरोऽभवत्।।

(भोरे ने अलग अलग चार फूलों से रस लिया और स्वयं मायाजाल में पड़ता गया, फिर वह मुक्त हो कर तिरोहित हो गया।)

चारों रमणियाँ इस पद्य का आशय नहीं समझ पाईं। ज्योतिषी उन्हें संकेत से समझाने का प्रयास करता रहा। वे यह न समझ पाईं कि उन चारों को धोखा दे कर छोड़ कर जाने वाला प्रेमी एक ही व्यक्ति है।

कहानी का संविधान अनोखा है। पाठक अंत में कल्पना करता रह जाता है कि धोखा देने वाले प्रेमी का इन चारों में कब कब किस के साथ संबंध हुआ होगा। चारों की आपबीती में वह टूटी कड़ियाँ जोड़ कर उसके भीतर से एक और कहानी गढ़ने लगता है। भारतीय आख्यान शैली में कथाकर्त्री ने पाश्चात्त्य कथाविधा का गंगायमुनी संगम रच दिया है।

इस कहानी की सारी परिकल्पना विलक्षण है। बाद में इस तरह की कथावस्तु को ले कर फिल्में बनाई गई, संभव है उन में क्षमा राव का ही परोक्ष प्रभाव हो। कहानी पुरुष की स्त्री को ले कर मृगयाभाव या शोषणवृत्ति तथा नारी-मनोविज्ञान की गहरी मीमांसा प्रस्तुत करती है। क्षमा राव इसमें एक साहसिक कथाकार के रूप में भी दिखाई देती हैं, वे विवाहेतर संबंधों का खुल कर चित्रण करती हैं, पुरुष की लंपटता और नारी की लोलुपता दोनों का खुलासा बेबाक ढंग से उन्होंने कर दिया है। पचहत्तर वर्ष पूर्व संस्कृत में इसतरह की कहानी का लिखा जाना एक चमत्कार ही है। कहानी में कुछ विसंगतियाँ भी है, जैसे मोहिनी का संबंध दो युवकों से हुआ, इनमें से ज्योतिषी के द्वारा सूचित प्रेमीभ्रमर कौन है – यह पता नहीं चलता।

आठवीं कहानी *स्वाप्निकव्यामोहः* राजस्थान की मरुभूमि में घूमती है। इसे पढ़ कर रवींद्र नाथ टैगोर की *क्षुधित पाषाण* नामक कहानी की स्मृति हो आती है। पूरी कहानी स्वप्न के तानेबाने में उलझी एक फैंटेसी (कल्पना) है। आख्यायक मरुभूमि में रात को स्वर्णपुरी के राजा करणसिंह का वृत्तांत देखता है। करणसिंह की पुत्री राजकन्या भारती एक महायोगी पर मुग्ध है। उसका विवाह किसी राजकुमार से होने वाला है, वह भाग कर योगी की गुफा में आ जाती है। कहानी के अंत में पता चलता है कि यह सब स्वप्न था।

नवीं कहानी *नजमदिलेलः* में इतिहास और फेंटेसी दोनों का मिश्रण है। कहानी का आख्यायक अपने मित्रों के साथ काश्मीर घूमने आया हुआ है। नौकालय (हाउसबोट) में चर्चा छिड़ती है कि क्या सम्मोहन विद्या के द्वारा किसी के प्राण लिये जा सकते हैं। नौकालय का स्वामी कासिम आख्यायक को इस चर्चा के क्रम में एक कहानी सुनाता है। नजमदिलेल कोहिनूर की तरह एक हीरा है। कासिम को हीरे खरीदने का शोक है, और वह मजमदिलेल के मालिक के पास यह हीरे देखने गया था। हीरे के मालिक उसे हीरा दिखाने के बाद नमाज पढ रहे थे, तभी उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। कहानी में इस रहस्य की गुत्थियाँ उलझतीं जातीं हैं कि हीरे के मालिक शेख अब्दुल रहमान की मृत्यु का कारण क्या था। सबको शक कासिम पर होता है। पर पोस्ट मार्टम

की रिपोर्ट आने पर कासिम शक के घेरे से बाहर हो जाता है। क्या किसी ने सम्मोहन के द्वारा उसके प्राण ले लिये यह भी प्रश्न उठता है। अंततः रहस्य खुलता है कि शेख की मृत्यु एक साँप के काटने से हुई थी।

दसवीं कहानी *विधवोद्वाहसङ्कटम्* क्षमा राव के अन्य कथासंकलन *कथापञ्चकम्* में पद्यात्मक रूप में भी आई है। गद्य में इसे लिखते हुए क्षमा देवी ने अंत बदल दिया है। विधवा पार्वती धुल्लियापुर (धुले) से अपने प्रेमी के साथ पूना भाग जाती है, पर पापबोध से आक्रांत हो कर प्रेमी को छोड़ कर फिर ससुराल लौट आती है। ससुराल में उसे बहुत अपमानित किया जाता है। पद्य में लिखी कहानी इसी क्षण पर आकर समाप्त हो जाती है, क्षमा देवी ने उसे फिर से प्रेमी से मिलवा दिया है। पार्वती फिर अपने प्रेमी के साथ पूना आती है, पर विवाह नहीं करती, वह एक अनाथाश्रम में रहने चली जाती है।

ग्यारहवीं कहानी *क्षणिकविभ्रमः* में चार चरित्र हैं – सुनीति और हरि – ये दोनों दंपति, उनका पुत्र कुमार तथा इस परिवार का शुभचिंतक रामदास। कहानी पुण्यपुर (पूना) के पास के एक गाँव में आरंभ होती है। रामदास सुनीति को केसरी अखबार के पुराने अंक पढ़ कर सुना रहा है। सुनीति का पति हरि एक स्वाभिमानी और सुशिक्षित युवक था। वह गाँव की पाठशाला में प्रधानाध्यापक था। पर यह पाठशाला छात्रों की संख्या नगण्य होने से बंद हो गई। हरि कुछ समय अपने व्यय से इसे चलाता रहा। इसके ससुर ने उसे बुला कर नौकरी दिलवाने का प्रस्ताव किया, जो स्वाभिमान कारण उसने स्वीकार नहीं किया। कुछ समय तो सुनीति के गहने गिरवी रख कर काम चलाया गया। एक बार हरि नौकरी ढूँढने के लिये बाहर गया, तो लौटा नहीं। कुछ दिनों के बाद सुनीति को रेलवे विभाग की ओर से तीन सौ रुपये व एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि आपके पति के हत्यारे की जेब से यह राशि प्राप्त हुई है, जो आपको सौंपी जा रही है। एक महीने बाद केसरी अखबार के पुराने अंक में ट्रेन में किसी अज्ञात व्यक्ति की हत्या का समाचार रामदास ने देखा, उसके विवरण से सुनीति ने अनुमान किया कि यह उसी के पति की हत्या का समाचार है। खबर में यह भी बताया गया था कि हत्यारे पर मुकदमा चला और उसे बीस साल के लिये यरवडा के जेल में बंद कर दिया गया है।

सुनीति हरि की माँ की इच्छा के अनुसार उन रुपयों का उपयोग देवालय बनवाने में तथा अपना जीवन निर्वाह करने में करती है। पर उसे यह समझ में नहीं आता कि उसके पति को इतने रुपये कैसे मिले होंगे।

स बात को बीस वर्ष बीत गये। इस बीच सुनीति का बेटा कुमार थोड़ा बड़ा हुआ, तो एक सेठ के यहाँ नौकरी करने लगा था। एक बार वह दस रुपये के नोट की चोरी के इल्जाम में पकड़ा गया और उसे येरवडा जेल में भेजा

गया। सुनीति उससे मिलने जेल में आई, तो उसने बताया कि एक बहुत ही भले कैदी से उसका यहाँ परिचय हो गया है, जो उन्नीस वर्षों से इस जेल में बंद है, तथा एक वर्ष बाद छूटेगा। जेल के अधिकारी तथा बाकी कैदी उसका बहुत आदर करते हैं। वह कैदियों को कथा-पुराण आदि सुनाता रहता है। सुनीति अपने बेटे के लिये दुखी होती रहती है, वह उसे कैदी के साथ संबंध रखने से मना करती है। एक वर्ष बाद कारावास की अवधि पूरी होने पर कुमार अपने साथ उस कैदी को भी घर ले आता है। सुनीति इससे बहुत कुपित होती है। वह कैदी की सूरत भी देखना नहीं चाहती। वह हत्यारे कैदी को घर लाने के लिये कुमार की बहुत लानत मलामत करती है। कुमार उस कैदी की बहुत प्रशंसा करता हुआ बताता है कि वह नित्य भगवद्गीता का पाठ करता है, जब मैंने उसे बताया कि किस तरह भूख और दरिद्रता के कारण मैंने दस रुपये का नोट सेठ की तिजोरी से चुरा लिया था, तो उसकी आँखों में आँसू आ गये।

कथा के रहस्य की परतें खुलती है। यह कैदी वास्तव में हरि स्वयं ही है।

हरि बीस साल पहले की घटना कुमार को बताता है। वह जब नौकरी के सिलसिले में ट्रेन से दूसरे नगर जा रहा था, अपने सामने की सीट पर उसने एक यात्री को सोया हुआ देखा। यात्री इस तरह निश्चल और श्वासहीन स्थिति में सोया हुआ था कि मुझे संदेह होने लगा कहीं वह मूर्च्छित तो नहीं है। उसे जगाने के लिये झकझोरा, तो लगा कि यात्री तो मर चुका है। झकझोरने से यात्री के तकिये के नीचे रखा पर्स नीचे गिरा, जिसमें तीन सौ रुपये और एक पत्र था। पत्र में लिखा था कि जिस किसी को इस पर्स में रखे तीन सौ रुपये मिलें, वह इन्हें किसी बेरोजगार के निर्वाह या देवालय के निर्माण के लिये दे दे। मेरा इस संसार में कोई नहीं है, मेरी मृत्यु का समाचार किसी को न बताया जाये।

हरि अपनी आपबीती बताते हुए आगे कहता है - पत्र पढ़ कर मैं बहुत अंतर्द्वंद्व में पड़ गया। पहले तो लगा कि मैं मृत व्यक्ति के तीन सौ रुपये क्यों लूँ, फिर लगा कि मृत व्यक्ति जैसे मुझे ही संबोधित कर के रुपये लेने का आग्रह कर रहा हो। मैंने जल्दी से अपने कपड़े उसे पहना दिये और उसके कपड़े पहन लिये। उसका पत्र फाड़ कर फैंक दिया। फिर इस घर का पता और अपनी घड़ी उस यात्री के परिवर्तित वस्त्रों में रख दिये। इस तरह मैंने स्वयं मर चुके उस यात्री की हत्या का पाप अपने सिर पर ले लिया। सोचा कि इन रुपयों से देवमंदिर भी बन जायेगा और सुनीति कुछ समय तक अपना जीवन निर्वाह भी कर सकेगी।

कथा के अंत में सुनीति और हरि का पुनर्मिलन आकस्मिक रूप से होता है। परिवार का शुभचिंतक रामदास इस सारे रहस्य को आरंभ से ही जानता था, पर हरि की इच्छा के अनुसार उसने यह बात किसी को नहीं बताई।

इस कहानी में कुमार का भोलापन, हरि की गंभीरता, सुनीति की सहनशीलता व रामदास की सदाशयता – सभी अपने आप में आसाधारण हैं।

बारहवीं कहानी *निशीथबलिः* की नायिका जुलेखा है। वह एक समृद्ध जमीदार हबीबखान की बेटी है। उसकी माँ का निधन बहुत पहले हो चुका है, विशाल हवेली में वह बंदिनी की भाँति रहती है। उसकी अंग्रेजी की ट्यूटर भी अब जा चुकी है। उसकी धाय, जो अब अंधी हो चुकी है। धाय के पिता तथा उनके पुत्र उस्मान के अतिरिक्त जुलेखा को अन्य किसी से मिलने की अनुमति नहीं है, न हवेली से बाहर निकलने की। अंग्रेजी पढ़ने के कारण स्वतन्त्रता का विचार उसके भीतर जग चुका है। इसी बीच उसके पिता किसी अपरिचित से उसका विवाह तय कर देते हैं। हबीबखान अपने सेवक उस्मान को आदेश देते हैं कि वह जहाँ से जुलेखा की बारात आनी है, वहाँ चला जाये और बरातियों को साथ ले कर आ जाये। उस्मान को जुलेखा से सहानुभूति है। वह जाने के पहले जुलेखा को यह बात बताता है। जुलेखा उसे फुसलाती है कि वह उसे यहाँ से भगा ले जाये, वह उस्मान के साथ शादी कर लेने का लालच भी देती है। उस्मान ललचा जाता है। वह बरात लेने के लिये न जा कर जिस गाड़ी से उसे जाना है, उसीमें जुलेखा को छिपा कर भगा ले जाता है। दोनों एक गाँव में रुकते हैं। गाँव में किसान दंपति का उन्मुक्त रहन सहन देख कर जुलेखा उन्हीं के साथ रहने का निर्णय कर लेती है। उस्मान मौलवी को बुला कर निकाह करने के लिये उस पर जोर डालता है और धमकाता है, जुलेखा उसे अपने सारे गहने दे देती है, और कहती है कि यदि तुम ने मेरे बारे में मुँह खोला तो पहले तुम मारे जाओगे। उस्मान गहने ले कर चला जाता है, जुलेखा गाँव के उन्मुक्त वातावरण में रहने को स्वतंत्र हो जाती है।

यह कहानी हास्य की छटाएँ बिखेरती चलती है। किसान दंपति के घर में रात को जुलेखा जो वार्तालाप सुनती है, उससे वह आतंकित हो जाती है, उसे लगता है कि वे दोनों देवी काली के लिये किसी स्त्री और पुरुष को बलि चढ़ाने के बारे में बात कर रहे हैं। वह इस घर से भी भागने का विचार कर रही है, तभी उसे पता चलता है कि बलि किसी बकरे और बकरी की दी जानी है।

तेरहवीं कहानी *मत्स्यजीवी केवलम्* माँ और बेटे के प्रेम की करुण कथा है। गणु मछुआरे का लड़का है, पर बुद्धिमत्ता, मेधा और प्रतिभा में असाधारण है। कथा का आख्यायक उससे मिल कर प्रभावित होता है। उसके

पिता की नाव तूफान में डूब जाती है और वे अनेक मछुआरों के साथ जल समाधि ले लेते हैं। गणु पिता को खोजने जाता है, सागर उसे बहा ले जाता है। मूर्च्छित अवस्था में वह संन्यासियों को मिलता है, जो उसे पालते हैं और पढ़ाते-लिखाते हैं। गणु की पिछले जीवन की स्मृति जा चुकी है। आख्यायक बीस साल बाद फिर गणु और उसके परिवार का हाल जानने के लिये उसी गाँव में आता है। इसी दिन संन्यासी श्रीगणेश जो वास्तव में गणु है, गाँव में आता है, मछुआरों की भीड़ उसके दर्शन के लिये उमड़ी हुई है। आख्यायक गणु की माँ अंबा से मिलता है, जो इस समय तक समाज की प्रतारणा झेल कर अर्धविक्षिप्त हो चुकी है।

श्रीगणेश (गणु) एक बडे ज्ञानी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। अंबा भी उसके दर्शन के लिये भक्तों के बीच प्रवेश करना चाहती है, पर लोग उसे दुत्कार कर भगाने लगते हैं। संन्यासी श्रीगणेश यह देख कर लोगों से उसे आने देने का अनुरोध करते हैं, वे करुणापूर्वक अंबा से पूछते हैं कि उसे क्या दुःख है। अंबा बताने लगती है कि वह बीस वर्षों से अपने बेटे को खोज रही है। उसकी बात सुनते हुए संन्यासी श्रीगणेश की स्मृति लौट आती है। वे अपनी सारी प्रतिष्ठा और लोगों के भक्तिभाव के आग्रह को छोड़ कर सब के सामने स्वीकार करते हैं कि वे वास्तव में एक मछुआरे के बेटे हैं। मछुआरों का समुदाय उन्हें धिक्कारता हुआ चला जाता है।

विडंबना, असंगति तथा व्यत्यास के बोध के साथ मातृवात्सल्य, कर्तव्य और प्रतिष्ठा की चाह के बीच द्वंद्व के चित्रण के कारण यह कहानी मर्म को छू लेती है।

चौदहवीं कहानी *आत्मनिर्वासनम्* की घटनाएँ महाराष्ट्र के लोनावला ग्राम में घटित होती हैं। मीरा एक परित्यक्ता गृहिणी है। गुणे, जो पेशे से डाक्टर है, उसके परिवार का शुभचिंतक है। बेटों के उपनयन के समय किसी नर्तकी को बुलाया गया था, उसका पति उस नर्तकी को छोड़ने गया, तब से लौट कर नहीं आया। उसने एक पत्र भेज दिया जिसमें लिखा था कि किसी विशेष कारण से वह घर छोड़ रहा है। मीरा समझती है कि उसके पति अनुप ने नर्तकी के प्रेम में पड़ कर उसे छोड़ दिया है। वह किसी तरह दोनों बेटों को पालती है। इस बात को कई वर्ष बीत चुके हैं। एक दिन परिवार का शुभचिंतक गुणे मीरा के घर आता है और बताता है कि उसके पास उसके पति अनुप का समाचार है, वह उसके साथ चले। मीरा अपने पति का नाम भी सुनना नहीं चाहती। गुणे के बार बार समझाने पर वह किसी तरह तैयार होती है। दोनों ट्रेन से बंबई के निकट मांटुंगा नामक उपनगर में पहुँचते हैं और वहाँ गुणे उसे एक निर्जन और बीभत्स से लगने वाले एक भवन में ले जाता है। वास्तव में यह कुष्ठगोरियों का अस्पताल है। गुणे इसे एक मरणासन्न रोगी के

पास ले जाता है। मीरा रोगी को उस की मुखाकृति से पहचान लेती है – यह तो उस का पति ही है। चिकित्सालय के सभी डाक्टर और रोगी अनुप की बहुत प्रशंसा करते हैं, और बताते हैं कि केवल अपने परिवार की चिंता के अतिरिक्त कोई चिंता इन्होंने नहीं की। मीरा विलाप करती हुई गुणे से पूछती है कि आपको यह सब पता था तो मुझे क्यों नहीं बताया। गुणे कहते हैं कि अनुप ने उनसे वचन ले लिया था कि उसके कुष्ठग्रस्त होने की बात वे मीरा को नहीं बतायेंगें।

अनुप इसी दिन मीरा के अंक में दम तोड़ देता है। मीरा उसकी चिता में चढ़ कर प्राण दे देना चाहती है। गुणे उसे समझा बुझा कर रोकते हैं। गुणे और मीरा उसका अंतिम संस्कार निपटा कर घर लौटते हैं।

कहानी को स्मृतियों के आवर्तन और विवर्तन ने मार्मिक बना दिया है। मीरा पति की एक एक बात याद करती है कि घर छोड़ने के पहले वे किस तरह दोनों जुड़वाँ बेटों की बहुत अधिक चिंता करते रहे थे, और परिवार के लिये भी आने वाले कुछ वर्षों के लिये व्यवस्थाएँ करने के लिये सचेष्ट रहते थे।

अंतिम पंद्रहवीं कहानी *शरद्दलम्* कश्मीर की पृष्ठभूमि पर है। एक अमेरिकी महिला अर्विना आना शिकारे के मालिक अहर्जु की बेटी असमा से पूछ रही है कि उसने अंगरेजी पढ़ना क्यों बंद कर दिया। अस्मा का पिता अहर्जु उसे बताता है कि उनकी परंपरा में स्त्रियों को पढ़ाना वर्जित है, इससे बुराइयाँ जन्म लेती हैं। उदाहरण के ले वह अपने पिता सलिम्जु के मित्र बढइ सुभान के जीवन की घटना सुनाता है। सुभान ने बड़े चाव से परम रूपवती तथा सुशिक्षित अमीना से विवाह किया। अमीना सौंदर्य में नूरजहाँ से भी बढ़-चढ़ कर थी। व्यापार के सिलसिले में एक अफगान युवक सय्यद उनके यहाँ अक्सर आता रहता था। अमीना का मन उससे लग गया। वह उस युवक के पीछे इस तरह दीवानी हो गई कि उसके साथ भागने के लिये घर छोड़ कर चल दी। दैवयोग से रात को जब वह अपने प्रिय के पास जा रही थी, भयावह वर्षा हुई और अमीना आँधी में टूट कर गिरते एक पेड़ के नीचे दब गई। एक किसान दंपति ने उसकी चीख पुकार सुन कर किसी तरह उसकी रक्षा की और भोर होने पर सुभान को इसकी खबर लगी तो वह पत्नी को क्षमा कर के घर ले आया। पर अमीना अपने कुकृत्य पर इतनी लज्जित थी कि वह रात में घर छोड़ कर चली गई।

यह सारी कहानी बाजार के प्रवेश द्वार पर भिखारिन सुन रही है, कहानी सुन कर वह रोती हुई वहाँ से चली जाती है।

केवल कथाकर्त्री और पाठक ही जानते हैं कि यह भिखारिन अमीना है।

<u>क्षमा देवी की कहानियों की सामान्य विशेषताएँ</u>

क्षमादेवी की कहानियाँ नारीस्वांतत्र्य की भावना को व्यक्त करती है। नारी के संघर्ष और वेदना के स्वर उनमें मुखरित हुए हैं। ये कहानियाँ स्त्रियों का संसार सामने रखती हैं। इनमें एकाकिनी स्त्रियाँ हैं, जो स्वतंत्रता के लिये व्याकुल हैं, पति या पुरुष समाज के द्वारा प्रतारित हैं।

कहानियों की नाटकीयता उनके सौंदर्य को द्विगुणित कर देती है। नाटकीयता घटनाओं के आकस्मिक विपरिवर्तन तथा संवादों की तीक्ष्णता व उक्तिप्रत्युक्ति की विच्छित्तियों के कारण इन कहानियों में आई है। प्रायः सभी कहानियों में तीखे और पैने संवाद हैं। संवादों में पात्र कहीं कहीं हँसी ठट्ठा करते हैं, या वे किसी दुःखदायी प्रसंग को ले कर वाद विवाद करते हैं।

एक उदाहरण आत्मनिर्वासनम् कहानी से द्रष्टव्य है –

गुणे – भवत्याऽनुपस्यापरिमितगुणगणश्चिन्तनीयो न तु तदीयमन्तिममाचरणम्। आत्मनिर्वासनात्मत्यागयोः कारणं गोपयितुं प्रयोजनं गूढतरं स्यात् किलानुपस्य।

मीरा – नात्मत्यागः, परं भोगासक्तिः।

गुणे – भवतु। कथ्यतां यथेच्छम्। वस्तुतः सर्वमेव श्वो ज्ञास्यति भवती। द्रक्ष्यति च कञ्चन सुपरिचितं जनं यो निवेदयिष्यति किमपि रहस्यं गुर्वर्थम्।

मीरा – किं निवेदनेन। भग्नकाचः सर्वथा भग्न एव स्थास्यतीति न्यायेन भवत्सुहृदोऽपयशःकलङ्कः शशाङ्कस्याङ्क इवाशुद्धिमेव भजते।

गुणे - तथापि एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्ववाङ्कः इति कवीन्द्रस्य सूक्तिरत्नं न विस्मरणीयं भवत्या।

मीरा – दूषितः सर्वलोकेषु निषादत्वं गमिष्यतीति रामायणस्य भगवतो वाल्मीकेः सूक्तिरपि भवता स्मरणीया। (*कथामुक्तावली*, पृ. 115)

कहानियों के वर्णन दृश्यावली को चित्रपट की तरह फैला कर सामने ला देते हैं। इन वर्णनों में रंगों की मनोहारी छटाएँ है। साथ ही तरह तरह की ध्वनियाँ क्षमादेवी की कहानियों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का समग्र ऐंद्रियबोध सजा देती हैं।

ऊपर उद्धृत संवाद के बाद गुणे की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए वे कहती हैं –

इति प्रगल्भगिरा तयाऽभिहितो गृहागतो घटीयन्त्रमुद्धृत्य कोषादात्मनस्तरलितदृशा तद् व्यलोकयत्। गोधिकायास्तावत् प्रोच्चपटले गृहस्य निगूढाया क्वचिदशुभशंसी चिप् चिप् ध्वनिरश्रावि। पृ. 115

भाषा की प्रौढता तथा लय और अनुप्रासों की झंकार भी अपूर्व ही है।

हैमसमाधिः नामक छठी कहानी में क्षमा देवी ने बाणभट्ट के जाबालिवर्णन की शैली अपनाई है। उदाहरणार्थ -

प्रदोषस्यैधमानान्धकारे निष्प्रभनीललोहितपर्वतच्छायाभिर्घनीभूते स प्रवया जीर्णपर्णमिव वलितपीतवर्णास्य आनाभिविलम्बमानसितसान्द्रकूर्चो धूलीरूषितजटाजूटकोऽशिथिलाकुञ्चितगात्रो दाक्षिण्याङ्कितललाटो भद्रतयैव स्नातशरीरो भ्रूमध्यस्थापिताचलदृष्टिः शताधिकवर्षदेशीयः पुरातनकालप्रतीक इव समुललसत्। पृ. 43

(प्रदोष के बढ़ते अँधेरे में नीललोहित पर्वत की छायाएँ गहरा रहीं थीं। पुरातन काल के प्रतीक के समान वह बूढ़ा उसके सामने था – सूखे पत्ते की तरह। झुर्रियों से भरे उसके मुख का रंग पीला था। उसकी सफेद घनी जटा नाभि तक लटकी हुई थी। जटाजूट धूल से सना हुआ था। उसका शरीर कसा और सधा हुआ था। ललाट पर तिलक लगा हुआ था। वह सज्जनता में नहाया सा लग रहा था। उसने दृष्टि भोंहों के बीच टिका रखी थी। उसकी उम्र सौ वर्ष से अधिक थी।)

अमरनाथ गुफा के सामने यात्रियों के सम्मर्द का चित्रण आँखों देखा सा लगता है। सैंकड़ों बूढे लोग, लगड़े लूले लोग, यात्रियों को ठगते पंडे पुजारी, अँधे, गूँगे बहरे भिखारी, जीर्णशीर्ण वस्त्रों में लिपटे बटोही, कहीं अर्धनग्न शिशु अपनी अपनी माताओं के साथ लगे हुए – इन सबका एक बडा दृश्यपट उन्होंने स्फीत पदावली में रच दिया है।

आसीद् विशालस्थल्यां कन्दराद् बहिर्यात्रिकजनार्णवः – क्वचिच्छतशः परिणतवयस्काः, कुघटिताङ्गयष्टयः, क्वचित् परःसहस्राणां ब्राह्मणानां समूह इतस्ततो यात्रिकेभ्यो धनाशया साहाय्यं चिकीर्षुः क्वचित् परःशताना-मन्धपङ्गुमूकबधिरादिभिक्षुकाणां व्रातो जीर्णचीवरवेष्टिताङ्गः कम्पमानः क्वचित् परःशतानां परदेशीयानां समुदायो निवर्तमानः श्रीनगरम् क्वचिदर्धनग्नाः शिशवः स्वस्वमातृनितम्बलग्नाः। पृ. 44

मायाजालम् नामक कहानी में क्षमा राव ने प्रसंगवश पेरिस नगरी की रमणीयता का वर्णन किया है – नगरीयममरावतीसौन्दर्याधरीकारिणी, वसुधातलनिखिलनगरीललामभूता, बुवादबुलोयन्-तुलरीनामकविविधरम्य-तमोपवनजितनन्दनवनरामणीयकशोभिता, कूजन्नानाविधसुन्दराण्डज-विलसन्नीलोत्पलजलाशयसुषमानिधेर्देवता, आर्कदत्रियोम्फनामकविशालाष्ट-

पथसङ्गमभूषिता, शान्झलीझनामकदेदीप्यमान- विस्तीर्णराजमार्ग-विराजमाना, निखिलमहीतलदेशीयाश्रयभूता, नाट्यसङ्गीतनृत्यचित्र-शिल्पादिकलापधाम, असङ्ख्यबुलेवाडाख्यमहावीथीजनगुञ्जिता, नोत्रदाम-माद्लनसाक्रेकराद्याद्वितीयदेवतालयपवित्रीकृता, शिल्पसौन्दर्यसमलङ्कृता, विपणीवातायनरचितरुचिराम्बररजतहैमपात्ररत्नखचितालङ्कारादिभूषिता मां नितान्तं व्यमोहयत्। पृ. 51

महाकवियों के वचनों की अनुगूँजों ने उनके गद्य में न केवल अन्यच्छायासौंदर्य का आधान किया है, पारंपरिक प्रज्ञा के आलोक से उनकी भाषा को भी चमका दिया है। भवभूति के उत्तररामचरित के लव तथा मालतीमाधव की कामंदकी के कथनों का अनुरणन *मिथ्याग्रहणम्* नामक कहानी में सरला के इस कथन में हम सुन सकते हैं -

वाक्प्रतिष्ठानि देहिनां व्यापारतन्त्राणि। वाचि कलु सत्यासत्यहेतवो व्यवस्थिताः। पृ. 30

गुणाः प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तवः भारवि की इस उक्ति को वे *आत्मनिर्वासनम्* नामक कहानी में अपने पति और विवाह की स्मृतियों में मीरा के मन की उधेड़बुन के प्रसंग में सटीक उद्धृत करती हैं (पृ. 116)।

कहीं कहीं वे लोकव्यवहार से कहावतें या मुहावरे संस्कृत में लाती हैं। *क्षणिकविभ्रमः* कहानी में सुनीति कुमार से कहती है – भग्नस्फटिकं प्रतिसमाहितमपि न जातु पूर्ववद् भवेत् (पृ.81)। फूट गये काच को जोड़ भी दो, तो वह पहले जैसा नहीं हो सकता।

स्थितियों के निरूपण में पैनापन व प्रभविष्णुता लाने के लिये क्षमा राव नये मुहावरे गढ़ती हैं या पुराने मुहावरों को नई आभा से चमका देतीं हैं। परित्यक्ता कहानी में परित्यक्ता के जीवन की विडंबना के निरूपण में कहा गया है – दम्पत्योः परस्परप्रेमबद्धयोः कौबेरसम्पद्विडम्बिनि गेहे सन्ततेरभावात् प्रापञ्चिकसुखरसो मक्षिकापतनात् क्षीरमिव दूषितो बभूव। पृ. 18

नवीनशब्द निर्माण के अनेक उदाहरण इन कहानियों में हैं, जैसे - शारिनृपस्तम्भनम् (शतरंज के खेल में राजा को शह), मौलवी के लिये यवनपुरोहित (पृ. 49) है, और अजान के लिये भक्ताह्वान (पृ. 49)। नेरेटर के लिये आख्यायक शब्द का निर्माण क्षमाराव का महत्त्वपूर्ण योगदान कहा जा सकता है। एक स्थान पर उन्होंने इसका पर्याय कथक भी प्रयुक्त किया है (पृ. 129) असंस्कृत शब्दों में क्षमा राव इति लगा कर अन्य भाषा के शब्द के रूप में उनका प्रयोग करती हैं जैसे शर्बत इति। जब कि मस्जिदशब्द वे अपना लेती हैं। नमाज के समय बिछे गये गलीचे के लिये प्रार्थनाकौशेयास्तरण जैसा लंबा शब्द वे बनाती हैं। कहीं गृहनौका भी लिखती हैं, तो कहीं शिकारा भी

(पृ. 121)। झेलम वितस्ता नदी है – यह बात कदाचित् उनके संज्ञान में नहीं थी, वे जीलम शब्द का प्रयोग करती हैं (पृ. 121)। पलालपादुका (घास की चप्पल), गृहनौका (हाउसबोट) आदि नये शब्दों तथा किलिंज जैसे दुर्लभ शब्दों का प्रयोग क्षमा देवी ने पहली कहानी में किया है। दूसरी कहानी *तापसस्य पारितोषिकम्* में डाक्टर के लिये अगदङ्कारः शब्द का प्रयोग भी विलक्षण ही है। तीसरी कहानी *परित्यक्ता* में *गुटिकास्थूलं वर्षितुमारब्ध मघवा* (पृ. 16) *प्रष्टुमधृष्णवम्* (पृ. 16) *दयोदन्वान् भगवान् दामोदरो दीनायां मयि दयिष्यते एव।* (पृ. 17) जैसे वाक्य भाषा के निखार का मनोहारी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रेमरसोद्रेकः तथा *परित्यक्ता* आदि कहानियों में काश्मीर की वादियों व नैसर्गिक परिवेश का आँखों देखा सा चित्रण क्षमा देवी ने किया है। विवाह के पश्चात् वे काश्मीरभ्रमण के लिये कई बार गईं ऐसा लगता है।

सूक्तियाँ – बिनानुरागं हि प्रणयिनः प्रमदाया जीवनं व्यर्थमेव खलु। (पृ. 52) जैसी सूक्तियों ने इन कहानियों के सौंदर्य में चार चाँद लगा दिये हैं। कालिदास, बाण आदि महाकवियों के भाव, पदावली पदे पदे क्षमा देवी अपने गद्य में पिरो देती हैं और गद्य की मुक्तामाला को नई कांति से संवलित बना लेती हैं। *हैमसमाधिः* नामक छठी कहानी में काश्मीर व हिमालय का वर्णन कालिदास के कुमारसंभव से प्रेरित है। पदावली की आवृत्ति भी कथाकर्त्री कालिदास से करती है, उदाहरणार्थ – अस्तं गमिष्यतो भगवतः सहस्ररश्मेररुणरश्मिभिश्चुम्बितानि हिमच्छन्नान्युच्चशिखराणि हिमाचलस्य विविधधातुमयत्वाद् देदीप्यमानानि नानाविधरत्नखचितानीव विदूरात् प्रतिभान्ति स्म। नगाधिराजोऽयमवगाह्य पूर्वपश्चिमौ वारिनिधी भूमेर्मानदण्ड इव पूज्यमानस्तिष्ठतीति कवीन्द्रस्य सूक्तौ प्रेक्षकस्तं दर्शं दर्शं कथं न प्रतीतो भवेत्। पृ. 40

क्षमा राव की कहानियों में कहीं अतिरंजनाएँ चुभने लगती हैं, पदावलियाँ कथा के प्रवाह में रोड़े अटकाने लगती हैं। भाषा वाग्जाल में उलझ कर रह जाती है। बाण और सुबंधु की शैली में लिखने का क्षमा का प्रयास सराहनीय है, पर उनके कारण आधुनिकता बाधित होती है। क्षमा राव परिसंख्या, यमक और श्लेष अलंकारों का वितान रचने का प्रयास करती हैं। अर्थ की प्रांजलता छूट जाती है। उदाहरणार्थ – अहह कथं कमलामिव विमलां शारदामिव विशारदां सतीमिव सतीं स्वां प्रदर्शयन्ती मलिनहृदया स्थितवत्येतावत्कालम्। पृ. 28

शब्दप्रयोग व शब्दसंधान में भी क्षमा राव कहीं कहीं स्खलित भी हुईं हैं। *मायाजालम्* कहानी में देवालय के लिये वे सुरालय शब्द का प्रयोग करती

हैं (पृ. 48) जिससे संदिग्ध दोष आ जाता है, क्यों कि सुरालय मदिराशाला के अर्थ में भी प्रसिद्ध है। इसी तरह *स्वाप्निकव्यामोहः* में वलिनग्रीवाया अवलम्बमालाऽतिदीर्घोपयोगादिव जीर्णप्राया तत्तुहिनश्वेतकूर्चश्च ... वलिनभूतस्यानने (पृय 57) में वलिन शब्द में अप्रयुक्तत्व दोष है। बुर्के के लिये वे *पञ्चदाख्यप्राक्तनरूढिविशेष* जैसा भारी भरकम शब्द वे गढ़ती हैं (पृ. 123)। वहीं नीम के लिये सर्वविदित संस्कृत पर्याय निम्ब न लिख कर नीमतरु ही लिख देती हैं।

पर कतिपय स्वल्प व नगण्य स्खलनों के कारण कथाकार के रूप में क्षमाराव का असाधारण योगदान कम कर के नहीं आँका जा सकता। उनकी कहानियाँ आधुनिक संस्कृत साहित्य में चमत्कार हैं। यदि उनके समय के अन्य संस्कृत कथाकारों – भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, अंबिकादत्त व्यास आदि की कथाकृतियों से तुलना करें, तो क्षमा राव अपनी दृष्टि में इनसे अधिक प्रगतिशील व आधुनिक भावबोध से अपेक्षाकृत अधिक संपन्न तथा पूरे समकालिक संस्कृतसाहित्य के कालबोध को देखते हुए वे समय से आगे लगती हैं।

अध्याय 6
जीवनी, यात्रावृत्त तथा खंडकाव्य

क्षमादेवी के साहित्यिक व्यक्तित्व की संपन्नता उनके महाकाव्य तथा कथासाहित्य के अतिरिक्त अन्य स्फुट रचनाओं से विशेष रूप से विदित होती है। इनमें से जीवनचरितात्मक रचना *शङ्करजीवनाख्यानम्* का प्रकाशन उन्होंने स्वयं 1939 में कराया।

शङ्करजीवनाख्यानम्

शङ्करजीवनाख्यानम् में क्षमाराव ने कुल 17 उल्लासों तथा 840 श्लोकों में पूर्वजों, घर-परिवार की पृष्ठभूमि में अपने पिता शंकर पांडुरंग पंडित का जीवनचरित प्रस्तुत किया है। इसके अध्यायों को कवि ने उल्लास का नाम दिया है।

संस्कृत के किसी अन्य रचनाकार ने इतनी भव्य श्रद्धांजलि अपने पिता को न दी होगी। क्षमा देवी ने अपनी माँ उषा देवी के त्याग और सहिष्णुता के समादर में उचित ही उन्हें यह कृति समर्पित की है। समर्पणवाक्य में उनका माँ के लिये आदर व अनुराग दोनों छलकते हुए प्रकट हुए हैं-

अदृष्टपितृसौख्यायाः शैशवादपि या मम।
जनकस्थानमापन्ना स्वयं बोधमजीजनत्।।
कथयन्ती च नित्यं मे पितृसम्बन्धिनीः कथाः।
हृदि प्रेमाङ्कुरं देववाण्यां मे समरोपयत्।।
तस्यै श्रीमदुषादेव्यै कृतिं शान्तात्मने मुदा।
उषःशोभातिशायिन्यै मातृदेव्यै समर्पये।।

क्षमादेवी ने इस पुस्तक का लोकार्पण अपने पिता की 45वीं पुण्यतिथि पर 27 मार्च 1939 के दिन कराया।

आरंभ के उल्लासों में शंकर के पूर्वजों, परिवार तथा जन्म व बाल्यावस्था का वर्णन है। परिवार की माली हालत के चलते शंकर ने सत्रन्यायाधीश के न्यायालय में कर्मचारी के पद के लिये आवेदन किया।

सिफारिश के अभाव में इनका आवेदन खारिज कर दिय गया, कारण यह बताया गया कि मोड़ी लिपि में उनका हस्तलेख अच्छा नहीं है। शंकर को न्यायालय का यह व्यवहार अपमानजनक लगा, वे गाँव छोड़ कर वेलगाँव आ गये, जहाँ उन्होंने अंग्रेजी का अभ्यास किया। 1861ई. में उन्होंने प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की, जिससे उन्हें छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। यहीं से शंकर को अध्ययन में रुचि बढ़ती गई, उन्होंने बी.ए. पास किया, जिसके कारण उन्हें सरकारी नौकरी प्राप्त हुई। एक जर्मनी फौजी से परिचय हुआ, तो उन्होंने उससे जर्मन भाषा सीख ली। अंग्रेजी भाषा पर इनके अधिकार को देखते हुए इन्हें डेकन कालेज पूना में अंग्रेजी का सहाध्यापक नियुक्त किया गया। 1968ई. में इन्होंनें लैटिन तथा अंग्रेजी से एम.ए. उत्तीर्ण किया। पूना में आ कर संस्कृत भाषा में इनकी रुचि बढ़ती गई। संस्कृत के अध्ययन में दत्तचित्त हो कर इन्होंने संस्कृत में भी एम.ए. उत्तीर्ण किया। उसके पश्चात् इन्हें एक महाविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक की नौकरी मिल गई। शंकर पंडित ने ओरिएंटल ट्रांसलेटर तथा डिस्ट्रिक्ट डिप्टी कलेक्टर के पदों पर भी काम किया। अपने छोटे भाई सीताराम को इन्होंने पढ़ाया।

बाद में वे बंबई आ गये और लैटिन तथा अंग्रेजी का अच्छा अभ्यास कर के नये छात्रों को ये भाषाएँ सिखाने लगे। इसी समय उनका संपर्क रामकृष्ण भंडारकर से हुआ। बी.ए. उत्तीर्ण कर के पूना में महाविद्यालय में अध्यापन करने लगे। भंडारकर ने उन्हें संस्कृत के अध्ययन के लिये प्रेरित किया –

लब्ध्वा निजाङ्गनां साध्वीं किमन्या सेव्यते बुधैः।
जननीं वा परित्यज्य किमन्याऽऽश्रीयतेऽर्भकैः।। 4.16

(अपनी साध्वी पत्नी को पाने के बाद क्या कोई पराई स्त्री का सेवन करता है? अपनी माँ को छोड़ कर भला संतानें दूसरी स्त्री का आश्रय लेती हैं?)

इसी समय उनका संपर्क माधव रानाडे से हुआ। दोनों में आजीवन प्रगाढ़ मैत्री बनी रही, व दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी बन रहे। माधव रानाडे को हैजा हुआ, तो कष्ट उठा कर भी शंकर उनके पास रहे। दोनों के स्नेहसंबंध व मित्रता का वर्णन करते हुए क्षमादेवी लिखती हैं -

महान्तौ पुरुषावेतौ स्निग्धवृत्ती परस्परम्।
निसर्गादेव सञ्जातौ यथा श्रीरामलक्ष्मणौ।। 4.29

(दोनों महापुरुष थे, दोनों के मन की वृत्तियाँ एक दूसरे के लिये स्नेह में रँगी हुईं थीं। स्वभाव से दोनों एक दूसरे के लिये राम और लक्ष्मण की तरह थे।)

पूना निवास के दिनों में अन्य मित्र बर्वे शास्त्री हुए। इसी समय लैटिन भाषा के अपने अभ्यास पर बहुत गर्व करने वाले एक अंग्रेज को उन्होंने लैटिन में धाराप्रवाह बातचीत कर के चकित कर दिया था। मोरोपंत की गाथाओं और तुकाराम के अभंगों में उनका मन रमता। उन पर संपादन संशोधन का कार्य भी उन्होंने इस बीच किया।

अध्ययन के प्रति बचपन से ही उनके मन में लगाव था। बाद में यह संस्कृत के प्रति मुड़ता गया। 1874 ई. में डा. भंडारकर के ओरिएंटल इंटरनेशनल कांफ्रेंस में न जा सकने पर इन्हें उस कांफ्रेंस में भेजा गया। शंकर पंडित ने इस कांफ्रेंस में कालिदास के काल पर अपना शोधलेख प्रस्तुत किया, जो चर्चित व प्रशंसित हुआ। पहला कार्य उन्होंने *रघुवंशम्* के संपादन व अंग्रेजी तथा लैटिन में विशद टीका लेखन का किया। उसके पश्चात् *विक्रमोर्वशीयम्* तथा *कुमारसम्भवम्* के समीक्षात्मक संस्करण तैयार किये। । इसी दौरान उन्होंने पुत्तलिका नाट्य से संस्कृत नाटक की उत्पत्ति का सिद्धांत प्रस्तुत किया। कालिदास का काल उन्होंने शकारि विक्रमादित्य के समय माना। 1876ई. में शंकर ने वेदार्थरत्न नाम से मासिक पत्र निकालना आरंभ किया, जिसमें ऋग्वेद संहिता का उनका मराठी व अंग्रेजी अनुवाद छह वर्षों तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। यह पत्रिका विदेशों तक जाती थी, व जर्मनी में भी इसके ग्राहक थे।

शंकर पंडित ने 36 वर्ष की आयु में लंदन की यात्रा की। संपूर्ण ऋग्वेद का मराठी अनुवाद, मुंजकालीन विक्रय लेख का उद्धार कर के उन्होंने उस पर बर्लिन अकादेमी की शोधपत्रिका में लेख प्रकाशित कराया। चौदह भाषाओं के उनके ज्ञान के कारण सरकार उनका सम्मान करती थी।

स्वाभिमान उनमें कूट कूट कर भरा था। सरकारी नौकरी करते हुए भी देश की सेवा करते रहे। अंग्रेज अधिकारियों से कई बार विवाद हुआ।

यह काव्य शंकर पांडुरंग पंडित के समाजसेवकरूप की भी अंतरंग झलक देता है। कोसंबी गाँव में बाढ़पीड़ितों के लिये कार्य व प्रार्थनासमाज में उनकी संलग्नता का वर्णन क्षमा राव ने किया है। स्त्रीशिक्षा के आंदोलन के जुड़े रहे, रूढ़िवादियों से बहुत विवाद भी हुआ। शङ्करजीवनाख्यानम् के दसवें उल्लास में क्षमा ने चिप्लूणकर से उनके तीखे विवाद का उल्लेख किया है। स्त्री शिक्षा के लिये उन्होंने एक कन्या विद्यालय तथा एक महिला विद्यालय की स्थापना की।[1] कन्या विद्यालय के सिलसिले में भी उन्हें द्वेषी अधिकारियों की प्रतारणाएँ झेलनीं पड़ीं। उन्होंने विद्यालय के एक समारोह में ब्रिटेन का

[1] ततश्च स्थापयामास पाठशालाद्वयं शुभम्
बालिकायोषितामर्थे तदुत्कर्षसमुत्सुकः।। *शङ्करजीवनाख्यानम्*, 16. 20

राष्ट्रगीत नहीं गवाया था। अधिकारियों की मदांधता व शंकर पंडित के आत्मसंघर्ष का सुंदर चित्रण क्षमा राव ने यहाँ किया है।

इस कृति में क्षमादेवी ने पिता की रुग्णता, पत्नी व बेटियों के लिये उनकी चिंता न स्नेह के अंतरंग कारुणिक चित्र उकेरे हैं। शंकर पंडित प्रायः संस्कृत के छात्राओं या बटुओं को भोजन के लिये घर पर आमंत्रित करते। क्षमा पिता से विवाद करने लगती कि जब देखो तब बटु जन भोजन के लिये क्यों घर में आ जाते हैं। एक बार पिता ने विनोद में कह दिया कि इन्हीं में से किसी एक से तेरा विवाह कराना है – इसलिये इन्हें बुलाता हूँ। बच्ची क्षमा ने इस हँसी को सत्य समझा और फूट फूट कर रोने लगी।

स्मृति का कैसा अचूक और मार्मिक प्रयोग है! क्षमा राव जब तीन वर्ष की हुई ही थीं कि उनके पिता चल बसे थे। यह प्रसंग जब घटित हुआ, तब वे दुधमुँही बच्ची ही तो थीं! पर उनके चित्तपटल पर पिता के विनोदी स्वभाव की मधुर स्मृति के रूप में यह प्रसंग अँका हुआ है।

समीक्षा

पूरे काव्य में महाराष्ट्र की संस्कृति का अच्छा अंकन हुआ है। मराठी भाषा का प्रभाव भी क्षमाराव की भाषा पर झलकता है। शंकर अपने पुत्र वामन से कहते हैं – अरे वामन शङ्खस्त्वम् (16.81) – अरे वामन तू तो शंख है। मराठी भाषा में शंख शब्द का मूर्ख के अर्थ में लाक्षणिक प्रयोग होता है, संस्कृत में ऐसा प्रयोग प्रचलन में नहीं है।

इस चरितकाव्य में क्षमा राव ने अपने समय से चालीस साल पहले के काल को साकार कर दिया है। पिता शंकर की जीवनयात्रा को जिस तरह उन्होंने सजीव बनाया है, वह सर्वथा प्रशस्य है। बचपन से लगा कर वार्धक्य तक उनके जीवन के विविध प्रसंगों तथा मनःस्थितियों को कविपुत्री रूपायित करती चलती हैं। बचपन में शंकर की अध्ययन की लालसा का वर्णन करती हुई वे उन्हीं के शब्दों में कहती हैं –

उत्सुकस्यापि मे स्थानमीदृशं भाति दुर्लभम्।
पूर्णेन्दुरिव डिम्भस्य लिप्सोः कन्दुकमानिनः।। 2.6

(मैं इस स्थान पर रह कर अध्ययन करने के लिये उत्सुक हूँ, पर यह मेरे लिये इसी तरह दुर्लभ है जैसे गेंद से खेलने वाला बच्चा पूर्णचंद्र के लिये लिप्सा करे।)

संस्कृत में बोलचाल की भाषा की बानगी देते हुए वे ताजे मुहावरे ले आती हैं। अंग्रेज अधिकारियों के कपट के चित्रण में कहा है -

आङ्ग्लाधिकारिणो नूनं निपुणाः स्वार्थसाधने।
तिले तालं हि पश्यन्तः करिष्यन्त्यधरोत्तरम्।। 11. 45

(तिल का ताड़ बनाने वाले तथा उल्टा सीधा करने वाले ये अंग्रेज अधिकारी स्वार्थ साधन में निपुण हैं।)

सूक्तियाँ

शङ्करजीवनाख्यानम् में अनेक रमणीय व प्रेरणादायक सूक्तियाँ समाविष्ट हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

निर्धनोऽपि वरं प्राज्ञो निर्बुद्धेर्धनिकादपि। 2.11, पृ. 6

(मूर्ख धनिक से समझदार निर्धन अच्छा।)

फलत्येव हि कल्याणं फलं तीव्रतपस्तरुः। 2.18, पृ. 8

(घोर तप कल्याणदायक फल देता ही है।)

अहितं हितमेव स्याद् देवयोगेन देहिनाम्। पृ. 9 2. 28

(शरीरधारियों के लिये भाग्य के योग से अहित भी हित बन जाता है।)

अहो देवस्य वैचित्र्यं दीना निर्दीपपाठिनः।

विद्युद्दीपविभूत्यापि धनिकास्तु निरक्षराः। 3.8, पृ. 11

(भाग्य की कैसी विचित्रता है कि दीन जन बिना दीपक के पढ़ाई कर लेते हैं। धनिक लोग बिजली की रोशनी की समृद्धि में भी निरक्षर रह जाते हैं।)

दुर्दमोऽपि वशं नूनं नीयते मधुरोक्तिभिः

सज्जनः कुत्सितैः शब्दैर्विमुखः क्रियते क्षणात्।। पृ. 136

(दुर्दांत व्यक्ति भी मीठी बातों से वश में किया जा सकता है। सज्जन भी कुत्सित शब्दों के कारण क्षण भर में विमुख हो जाता है।)

अलंकार

क्षमा राव की सभी रचनाओं में भाषा का सौष्ठव व सालंकारता प्रभावित करती है। शङ्करजीवनाख्यानम् में उन्होंने कथामुक्तावली या मीरालहरी की तरह भाषा की सायास साजसज्जा करने का कोई संरंभ नहीं किया है। अलंकार उनकी अभिव्यक्ति की धारा में सहज रूप में तरंगों की तरह हिलोर लेते हुए साथ में चलते हैं। पिता के प्रति श्रद्धा उनका उत्स है। शंकर पंडित के लिये वे कहती हैं -

सुखावासोचिताभ्यासः स्वभ्यासोचितसंस्कृतिः।

संस्कृतेः सदृशारम्भः शङ्करः शङ्करोऽभवत्।। पृ. 13 3.13

(जैसा सुखकर उनका आवास था, वैसा ही उनका विद्या का सहज अभ्यास था। जैसा अभ्यास था, वैसी संस्कृति उनमें विकसित हो गई थी। संस्कृति के समान उनका हर काम सुसंस्कृत रूप में आरंभ होता था। इस तरह शंकर साक्षात् शंकर थे।)

इस पद्य पर कालिदास के रघुवंश में दिलीप के वर्णन की स्पष्ट छाया है।[1] उसके कारण उपमेयोपमा की छटा यहाँ आ गई है। यहाँ शंकर शब्द के प्रयोग में यमक अलंकार भी है।

क्षमा राव के एक एक पद्य में दो या दो से अधिक अलंकार एक साथ आते हैं और कथ्य में अनायास समाविष्ट हो जाते हैं।

मनो हि महनीयानां प्रेमहेतुर्न सन्निधिः। पृ. 32 5.46

(बड़े लोगों के बीच प्रेम का कारण उनका मन होता है, बाहर का साथ नहीं)। यहाँ अनुप्रास के साथ विशेष का समर्थन सामान्य से करते हुए अर्थांतरन्यास अलंकार का कवि ने यहाँ उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

किं निसर्गसुरूपाया रक्तकाञ्चनभूषणैः।
शरदिन्दुविभासिन्या रजन्याः किं प्रदीपतः।। पृ. 149

(जो स्वभाव से सुरूप है, उसके लिये स्वर्णाभूषणों की क्या आवश्यकता? शरच्चंद्र की चाँदनी में जगमगाती रात के लिये दीपक का क्या काम?)

यहाँ निदर्शना अलंकार का प्रयोग बडा सटीक है।

<u>स्वातन्त्र्यभावना</u>

क्षमा राव की सभी रचनाओं में स्वराज के अन्वेषण का भाव बराबर अनुस्यूत रहा है। शंकर पंडित की जीवनी के पीछे भी यह भाव अव्याहत है। शंकर पंडित अपने अध्ययन के द्वारा पश्चिमी प्राच्यविद्याविशारदों को चुनौती देते हैं, वे अंग्रेज अधिकारियों की अहम्मन्यता का प्रत्याख्यान करते हैं। उनके चरित्र के द्वारा कवि ने परोपजीवी बने रहने के भाव को निरस्त करने का आह्वान भी किया है -

परपिण्डोपभुग् यः स्यात् स्वतन्त्रः स कथं भवेत् पृ. 77

शंकर पंडित की स्वदेशचिंता का चित्रण इस काव्य को क्षमा राव की काव्यरचना की मूल अभिप्रेरणा से जोड़ रखता है। उन्हीं के शब्दों में -

योहि कालानुगुण्येन प्रगतिं नानुवर्तते
स देशो भ्रष्टकल्याणः सुदूरमवहीयते।। पृ. 106

(जो समय के साथ चल कर प्रगति का अनुवर्तन नहीं करता, वह देश कल्याण से भ्रष्ट हो कर बहुत अधःपतित हो जाता है।)

<u>विचित्रपरिषद्यात्रा</u>

विचित्रपरिषद्यात्रा के भीतर के आवरण पर क्षमा के पिता का सुंदर आदमकद चित्र छापा गया है, जिसके नीचे क्षमादेवी का समर्पण श्लोक है –

---

[1] आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः। रघुवंश, 1.15

यशसा जीवते पित्रे पण्डिताख्यातिभागिने।

पाण्डुरङ्गस्य पुत्राय शङ्करायार्पये कृतिम्।।

विचित्रपरिषद्यात्रा 105 अनुष्टुप् छन्दों में यात्रावृत्तांत है। क्षमाराव 1928 में अनंतशयनम् (त्रिवेंद्रम्) में आयोजित प्राच्यविद्यासम्मेलन में भाग लेने के लिये गईं थीं। यात्रा में छोटी छोटी कौतुकवर्धक घटनाएँ घटती जाती हैं। अकेली महिला की लंबी यात्रा कैसी होती हैं, उसे किस तरह के अप्रत्याशित अनुभवों से गुज़रना पड़ता है, कई बार महिलाएँ उसकी सहायता करने की बजाय उसे धता बता देती हैं। यात्रा के समय क्षमा देवी ने अपनी मनःस्थिति आरंभ में ही निरूपित की है -

निर्विण्णता च वैक्लव्यं हृदये समजायत।

गेहाद् दूरं प्रयान्त्या मे वियुक्तायाः प्रियैर्जनैः।। 6

(अपने प्रिय जनों को छोड़ कर घर से दूर जाते हुए मेरे हृदय में उद्वेग और विकलता थी।)

एक यात्री जो उसी कांफ्रेंस में जा रहा था, उनसे पुस्तकें भी ले लेता है, साथ चल कर सबसे परिचय कराऊँगा – यह आश्वासन भी देता है, परंतु न पुस्तकें पहुँचाता है, न वहाँ मिलता है। क्षमा राव जब त्रिवेंद्रम् में सम्मेलन स्थल पर पहुँचती हैं, तो उन पर क्या बीतती है, यह उन्हीं के शब्दों में देखें -

अस्मद्भ्यो न केनापि न्यवेदि भवदागमः।

इत्युक्ताऽधिकृतैस्तत्र स्थिता लग्नेव भूतले।।

किङ्कर्तव्यमबोधन्ती स्विन्नोद्विग्नावमानतः।। 11-12

(सम्मेलन के अधिकारियों ने जब मुझ से कहा कि आप यहाँ आने वालीं हैं - हमें यह किसी ने नहीं बताया, तो तो मैं तो धरती में गड़ी रह गई। क्या करूँ समझ में नहीं आ रहा था, पसीना छूटने लगा और अवमानना के कारण उद्विग्न हो उठी।)

एक संन्यासी जो सम्मेलन में भाग लेने आये हैं, यह कह कर कि मैं तो रास्ते पर ही सो लूँगा अपना कक्ष क्षमा के लिये देने का प्रस्ताव करते हैं । यह सुन कर कोई व्यक्ति क्षमा राव को कमरा दिलाने के लिये तत्पर हो जाता है, वे उसके साथ दो घंटा भटकती रहती हैं। थक कर चूर हो जाती हैं। कोई अंग्रेज महिला उनकी हालत देख कर अपने कक्ष में ठहरा लेती है। पर उसके कक्ष में एक यहूदी महिला है वह चिल्ला कर कहती है कि इस मूर्ख महिला के साथ मैं नहीं रहूँगीं। पर अंग्रेज महिला उन्हें आश्वस्त करती है। इस परेशानी के बीच क्षमा राव को आश्वासन है तो गीता का -

स्मृत्वा तु भगवद्वाक्यं सुखदुःखे समे कुरु।

इत्यर्थबोधकं भूयः सत्वरं सान्त्विताऽभवम्।। 26

(सुख और दुःख में समान रहो – भगवान् के द्वारा गीता में कहे इस वचन को सुन कर मैंने फिर तत्काल सान्वना पाई।)

स्मारं स्मारं तु गीताया गहना कर्मणो गतिः।

इति भागवतीं सूक्तिं चिन्ता दूरीकृता मया।। 10

(श्रीमद्भगवद्गीता के इस वाक्य का स्मरण करते हुए कि कर्म की गति गहन होती है, मैंने अपनी चिंता मिटा डाली।)

सम्मेलन में वाद्यों व गीतों के साथ राजा व रानी का आगमन, उनके स्वागत मंगलाचार व मंगलाचरण, राजा साहब का संबोधन, सभाध्यक्ष श्री थामस का महत्त्वपूर्ण लोगों की ओर से प्राप्त संदेशों का वाचन इन सब का विशद चित्रण है।

शाम तक क्षमा के आवास की व्यवस्था भी हो गई। उनका मन रमने लगा। सम्मेलन में होने वाली तरह तरह की बातें होती हैं, क्षमा ने उनका संक्षिप्त प्रतिवेदन दिया है। यहाँ तक कि सम्मेलन कक्ष के बाहर जो चर्चा आपस में प्रतिभागीजन करते हैं, उसके भी रोचक टुकड़े उन्होंने उठा लिये हैं। किसी ने कहा कि सारे के सारे पंडित एक जैसे हैं, सब कुशल हैं, बोलने में कोई कम नहीं, महान् आडंबर रचते हैं, पर पश्चिमी विद्वानों की तरह विमर्श की शक्ति किसी में नहीं है।

प्राहैकः पण्डिता एते कुशला निर्विशेषतः।

न कोऽपि न्यूनवक्ताऽस्ति दृश्यते डम्बरो महान्।।

पाश्चात्त्येष्विव कस्यापि न तु शक्तिर्विमर्शने।। 56-57

रात्रि के कार्यक्रम में संस्कृत में *स्वप्नवासवदत्तम्* नाटक की प्रस्तुति का वर्णन किया गया है, जो क्षमादेवी को बहुत अच्छी लगी।

अगले दिन भोर में ही वे घूमती हुई पास के एक गाँव तक पहुँच गईं। सत्र में पढे गये आलेखों व विमर्श का भी वर्णन क्षमा ने संक्षेप में यहाँ किया है। क्षमा का अपना लेख न पढ़ा जा सका। रात में नटेश गोपीनाथ और तङ्गुणि का नृत्य था। नृत्य के रागरंग और रस में क्षमा देवी रम गईं।

अगले दिन भी वे आस पासके गाँवों में सैर करती रहीं। नौ बजे फिर सत्रों में विमर्श सुनने के लिये आ गईं। सम्मेलन समाप्त हुआ, क्षमा राव अकेली कन्याकुमारी घूमने चली गईं। इस यात्रावृत्त के अंत में उनकी उधेड़बुन मननीय है –

पुरातनीमहं कन्याकुमारीमवलोकितुम्।

एकाकिन्येव निर्विण्णा प्रस्थिता भोजनोत्तरम्।।

अथ मार्गेण गच्छन्ती नितरामन्वचन्तयम्।

भूयिष्ठाना दशां दीनां निर्धनानां विपश्चिताम्।।

भक्तास्ते देवभाषायास्तस्यै सर्वस्वमर्पितम्।

ईदृशां धनवैकल्यं पश्यन् को वा न दुःखितः।।
सुसम्पन्नाः कथं नूनं स्वयं देशाभिमानिनः।
देववाणीनिर्धनानेतान् विस्मरयुरहो चिरम्।।
प्राज्ञानामप्यनुत्साहो गैर्वाण्यां परिदृश्यते।
अज्ञानां च तिरस्कारः शोचनीयमिदं द्वयम्।।
अहो मूर्तिरसौ दिव्या देवभाषा सनातनी।
राष्ट्रीयवाङ् न यावत् स्यात् तावद्वास्यं ध्रुवं हि नः।।
स्यादज्ञानतमश्छन्नं तदुज्जीवनतो ध्रुवम्।
अतो रक्ष्याः सुसम्पन्नैः शास्त्रिणो द्योतका हि ते।। 99-105

(मैं भोजन के परश्चात् अकेली और उदास कन्याकुमारी का प्राचीन तीर्थ देखने चली गई। रास्ते में मैं अधिकांश संस्कृत पंडितों की निर्धनता और दीनदशा के बारे में सोच रही थी – वे देवभाषा के भक्त हैं, उसके लिये उन्होंने सर्वस्व अर्पित कर दिया, ऐसे विद्वानों का धनाभाव देख कर किसे दुःख न होगा? जो सुसंपन्न और देशाभिमानी लोग हैं, वे देववाणी के इन निर्धन सेवकों को भूल जाते हैं – यह अचरज की बात है। समझदार लोग संस्कृत भाषा को ले कर उत्साहहीन हैं, और नासमझ उसका तिरस्कार करते हैं - दोनों ही बातें शोचनीय हैं। देवभाषा एक सनातन दिव्य मूर्ति है, वह जब तक राष्ट्रभाषा न बन जाये, तब तक निश्चित रूप से हम लोग दास बने रहेगें। उसे पुनरुज्जीवित करने से ही अज्ञान का अँधेरा मिटेगा। इसलिये संपन्न जनों को इन पंडितों की रक्षा करनी चाहिये, जो प्रकाश लाने वाले हैं।

अपनी अन्य रचनाओं की भाँति कवि ने इस काव्य में भी शब्दों का संधान किया है, तथा यात्रावृत्तांत के अनुरूप भाषा गढ़ने का प्रयास भी किया है। त्रिवेन्द्रम् के लिये कहीं त्रिविन्दर शब्द का प्रयोग है (11) अन्यत्र अनन्तशयनम् शब्द का (1)। यद्यपि कि क्षमादेवी ने सर्वत्र शब्दसौष्ठव व व्याकरणिक शुद्धि का ध्यान रखा है, तथापि कुछ शब्दों में मराठी के प्रभाव से वर्तनी अशुद्ध हो गई है, जैसे कठिन को कठिण लिखना। यह मुद्रक का प्रमाद भी हो सकताहै।

पूरे काव्य में संस्कृत को ले कर एक मिशनरी भाव व्याप्त है। पहले ही पद्य में कवि ने अपने आप को संस्कृताभ्युदयैषिणी कहा है।

मीरालहरी

135 शार्दूलविक्रीडित छन्दों में निबद्ध इनका मीरालहरी काव्य नारी हृदय के समर्पण, आस्था, सामाजिक विसंगतियों के प्रति विरोध के भाव की अभिव्यक्ति करता है। यह मीरा का चरित भी है, और साधना की गाथा भी है। पण्डित क्षमा ने वस्तुतः इतने तन्मयीभाव से मीरा के अन्तरंग संसार का

चित्रण किया है कि लगता है वे स्वयं मीरा से एकाकार हो कर लिख रही हैं. या मीरा के माध्यम से अपने आप का अन्वेषण कर रही हैं। वर्णन कला और पदार्थों को मूर्त करने में कवि की सिद्धि यहाँ प्रकर्ष पर है।

अमरनाथ झा ने प्रस्तावना में इस काव्य की सरसता, रस व अलंकारों के प्रयोग, वाग्विलास तथा काव्यगुणोत्कर्ष की सराहना करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि क्षमा राव की कविता प्रतिभाशक्ति व पदलालित्यय की दृष्टि से महाकवि माघ के काव्य से कम नहीं है।

पहले ही पद्य में उदात्त, अतिशयोक्ति, रूपक अलंकारों की संसृष्टि रच कर चमत्कार खडा कर दिया है।

यस्याः सौधसुवर्णगोपुरमणिर्धम्मिल्लचूडामणिः
सामोदामलपुष्पकीर्णसुपथाः सौभाग्यमुक्तास्रजः।
कासारोऽब्जपरागवारिविमलः सच्चित्रहेमामांशुकः
सा कुर्खीति पुरा बभूव नगरी लावण्यभूर्मालवे।।

(जिस के भवनों पर व मुख्य द्वार पर लगी मणियाँ जूड़े में सजी चूडामणि थीं, मार्गों पर बिखरे सुगंधित पुष्प सौभाग्य की मुक्तामालाएँ थे, कमलों के झरते पराग से स्वर्णिम सरोवर विचित्र हेमांशुक थे, ऐसी मालवप्रदेश में लावण्य की भूमि कुर्खी नामक नगरी थी।)

मीरा के शैशव, कौमार्य, कृष्ण में अबाध भक्ति आदि का चित्रण मनोरम रूप से कवि ने किया है। वे मीरा को पार्वती और सीता से उपमित करती हुई अगले पद्य में कहती हैं-

निःशेषैः शुभलक्षणैः श्रितवपुः सुक्षत्रियेन्द्रोद्भवा
बाल्यादेव निदर्शिताद्भुतरसा श्रीकृष्णनामामृते।
मीराख्या निजजन्मना पुरमिदं चक्रे परं पावनं
शैलेन्द्रं गिरिजेव मैथिलकुलं सीतेव पूतात्मना।।

(सारे शुभलक्षण उसकी काया में थे, उत्तम क्षत्रियकुल में वह जन्मी थी, बचपन से ही श्रीकृष्ण के नाम के अमृत से अद्भुत रस की सृष्टि वह कर देती थी, ऐसा मीरा नामक देवी ने इस नगर को अपने जन्म से पावन बनाया, जैसे हिमालय को गिरिजा ने और मैथिल कुल को पवित्र रूप वाली सीता ने।)

मीरालहरी के कवित्वप्रकर्ष में क्षमादेवी का सौंदर्यबोध अलंकारों की छटा में द्विगुणित होकर व्यक्त हुआ है। मीरा के रूप का संदेह अलंकार के द्वारा वर्णन करती हुई वे कहती हैं -

बालेन्दुः किमयं विभाति न दिवा तत्कान्तिरेतादृशी
किं वा कैरविणी परं निशि हि सा जागर्ति संहासिणी
मूर्तिं किं कनकद्रवोपखचिता तस्याः कुतो विभ्रमा
इत्येनामवलोक्य कौतुकवशश्चक्रे विकल्पाञ्जनः।। 3

(क्या यह बाल चंद्रमा उग आया है – पर दिन में उसकी कांति ऐसी नहीं होती। क्या यह कमलिनी है, पर रात में वह इस तरह खिली हुई और खिलखिलाती नहीं दिखती। क्या यह सोने के पानी से मढ़ी कोई मूर्ति है, पर मूर्ति में हावभाव कहाँ होते हैं? मीरा को देख देख कर लोग इस तरह तरह तरह के विकल्प करते थे।)

क्षमा राव ने इस काव्य में बालविवाह कर के लौटती बारात का दृश्य अंकित कर के प्रकरणवक्रता, स्वभावोक्ति और भाविक अलंकारों उत्तम प्रयोग किया है। पाँच वर्ष की थी, तब मीरा ने अपनी सखियों के साथ हवेली के वातायन से मांगलिक वाद्यों के मनोहर स्वर से युक्त, मशालों से जगमगाती, एक पालकी को घेर तक चलती यात्रा (जुलूस) को देखा। पालकी में दूल्हा और दुल्हिन बैठे थे, जिनका अभी अभी विवाह हुआ था, दोनों मालाओं से लदे थे, दोनों किशोरावस्था में थे, दांपत्य के बारे में एकदम नासमझ थे, बूढ़े लोग उन्हें मुँह नीचा रख कर बैठे रहने को कह रहे थे, तो वे मुँह झुकाये हुए थे, लोगों की दृष्टि से उनके नयनकमल संत्रस्त थे, वे सजीधजी गुड्डे-गुड़ियों की तरह निःशब्द और निश्चेष्ट थे।[1] शब्द के अंकन, सूक्ष्मपर्यवेक्षण व कल्पना की उड़ान के साथ शिष्टहास्य के पुट ने मीरालहरी के ऐसे चित्रों को चित्ताकर्षक बना दिया है। बड़े-बूढों की झिड़की से त्रस्त सहमे हुए विवाहित बालयुगल के लिये यहाँ सजीधजी गुड्डे गुडियों की जोड़ी से उपमा विसंगति और विडम्बना के बोध को तीखा बनाती है। इस श्लोक में बालिका मीरा के लिये *भाविप्रौढिमचिह्नमुद्रितमुखी* तथा *पञ्चाब्दकल्पा* ये दो विशेषण विशेष साभिप्राय हैं।

मीरा का प्रेम में तन्मयीभवन और भावविह्वल दशा का चित्रण यहाँ डूबकर किया गया है। वह कृष्ण से बातें करती रहती है, उन्हें आर्त हो कर पुकारती है, रोमांचित हो जाती है, मुस्कुराती है, रोने लगती है, एक क्षण में जैसे ब्रह्मानंद के महासागर में निमग्न हो जाती है।[2] क्षमादेवी ने इस काव्य में

---

[1] भाविप्रौढिमचिह्नमुद्रितमुखी पञ्चाब्दकल्पैकदा
बालाऽलोकत बालमित्रसहिता प्रासादवातायनात्।
यात्रां मङ्गलवाद्यमञ्जुलरवां हस्तप्रदीपोज्ज्वलां
रात्रौ राजपथे सुवर्णशिविकामावार्य मन्दं यतीम्।।
तस्यां नूत्नवधूवरौ प्रवहणे मालाभिरावेष्टितौ
नाद्यापि प्रतिपन्नयौवनदशौ दाम्पत्यमूढावुभौ
वृद्धौक्त्या नमिताननौ जनदृशः सन्त्रस्तनेत्राम्बुजा-
वास्तां मण्डितपुत्रिकायुगलवन्निःशब्दनिश्चेष्टचितौ।।6

[2] दानं पाहि विभो त्वमेव शरणं नान्यः शरण्योस्ति मे
प्रार्थ्यैवं विनता प्रजातपुलका प्रोद्वीक्ष्य मूर्तेर्मुखम्।

पहले अप्रयुक्त अनेक अलंकारों का सधा हुआ प्रयोग कर के इस के कथासंविधान व अंतर्वस्तु में गरिमा व प्रकर्ष ला दिया है। सौंदर्यबोध के अन्वयन में ऐसे अलंकारों का प्रयोग अच्छा बन पड़ा है। मीरा बरातियों के इसी जुलूस को ले कर अपनी माँ से सहज रूप से सवाल करती है, उससे प्रश्नोत्तर की छटा कविता में बिखर गई है। मीरा एक भोली बच्ची है, माँ का उत्तर सुन कर वह पूछती है कि फिर मेरे पति कहाँ हैं, माँ उसे बहलाने के लिये घर के मंदिर में रखी कृष्ण की प्रतिमा को दिखा कर कह देती है कि तेरे पति ये हैं। माँ ने तो बच्ची के साथ हँसी करने के लिये यह कहा, मीरा में भीतर इससे आप्त गुरु का उपदेश आभासित हो गया। तब से बाह्य आलोक से उसका मन निवृत्त हो गया, कोई उसे न देखता, सब लोग अपने अपने काम में लगे रहते, वह चुपचाप मूर्ति के साथ बनी रहती।

तत्पूर्वेक्षितभूरिलोकनिचया विस्मेरचक्षुर्दृशा
मीरा प्राह किमेतदम्ब वद मे, यात्रास्ति वैवाहिकी।
मातः कुत्र पतिर्मास्ति ननु रे तिष्ठत्यसौ मन्दिरे
पश्येति प्रतिमां विभोर्निरदिशत् कृष्णस्य कोणस्थिताम्।। 7
श्रुत्वा बालविनोदमात्रलपितं मातुर्गिरां विस्तरं
जग्राहाप्तगुरूपदेशमिव सा श्रद्धाय सर्वात्मना।
बाह्यालोकरसान्निवृत्तहृदया केनाप्यनालोकिता
व्यग्रे सर्वजने ययौ च निभृतं श्रीकृष्णमूर्त्यन्तिकम्।। 11

इस पद्य में आप्तगुरूपदेश शब्द के द्वारा शास्त्रपरंपरा का ज्ञान कवि ने प्रकट किया है। बाह्यालोकरस और निवृत्ति की अवधारणाएँ भी कवि के पांडित्य की परिचायक हैं। आलोक और अनालोकित इन शब्दों के प्रयोग से पदप्रयोगवक्रता का अच्छा निर्वाह किया गया है।

माँ अपनी बेटी को ध्यानमग्न जिस स्थिति में देखती है, उसके वर्णन में भी कवि ने तदनुरूप शब्दसौष्ठव व साधुशब्दविन्यास के द्वारा बिंबविधान व चित्रोपमचित्रणवैचित्र्य कविता में उत्पन्न किया है।

कञ्चित्कालमतीत्य राजरमणी शुद्धान्तयोषिद्वृता
सम्प्राप्ता परिवृत्तशीलचरितामुद्दीप्तवक्त्रप्रभाम्।
स्थित्वा श्रीयदुनन्दनस्य पुरतो निर्वर्णयन्ती चिरं
चित्रस्थामिव निश्चलां दुहितरं चित्रीयमाणेक्षते।। 12

(कुछ दिनों के बाद एक दिन राजरमणी (मीरा की माँ) रनिवास की अन्य स्त्रियों से घिरी मीरा के मंदिर में गई, और मीरा को देखा। उसका मुख आभा से उद्दीप्त था। उसका शील व चरित बदल चुका था। वह श्रीयदुनंदन के

ईषत्स्मेरमिव स्थितं परवशा वाष्पायमाणेक्षणा
ब्रह्मानन्दमहार्णवे क्षणमहो मग्नेव रराजते।। (पूर्वखण्ड- 19)

सामने बैठी बड़ी देर से एकटक निश्चल उन्हें निहार रही थी, जैसे मीरा न हो मीरा का चित्र हो, रानी स्वयं भी बेटी को देखती हुई चित्रलिखित रह गई।)

मीरा के लड़कपन का छूट जाना, उसका व्यवहारजगत् में यंत्रवत् सारे कार्य करना, शिक्षादीक्षा ग्रहण करना इन सब का रुचिकर वर्णन मीरालहरी में कवि ने किया है। मीरा के पिता उसका विवाह तय कर देते हैं। वैवाहिक लोकाचारों का वर्णन भी यहाँ रोचक है। ससुराल में आने पर मीरा को ले कर उसकी सास और ननद ऊदा में बातचीत, दोनों के द्वारा उसके ऊपर आक्षेप करना कथासंविधान में उच्चावचप्रवाह ला देता है। मीरा की अगाध आस्था का बखान करती हुई कवि कहती है -

धावल्यं सितनीरजं त्यजति किं पङ्केऽपि नित्यं स्थितं
सौभाग्यं विजहाति किं हिमगिरिश्छन्नस्तुषारैरपि।
कान्तिं मुञ्चति किन्नु हीरकमणिर्लौष्टैश्च सन्दूषितः
किं चित्रं यदि धर्मतो न चलिता मीराऽपि तत्तज्जनैः।।46

(क्या सफेद कमल कीचड़ रह कर अपनी सफेदी छोड़ देता है? क्या हिमगिरि तुषार से आच्छादित हो कर अपना सौभाग्य को देता है? क्या हीरक मणि पत्थरों से दूषित किया जाने पर कांति त्याग देता है? तो क्या आश्चर्य यदि मीरा (अपनी सास और ननद) के तर्जन से अपने धर्म से विचलित नहीं हुई!)

कवि क्षमादेवी ही यह कर सकतीं हैं कि ऋतु के उत्सव और कौमार्य के ऋतूत्सव दोनों का श्लेष रच कर सृष्टि का परमोत्सव निर्मित कर दें। संस्कृतकाव्यपरंपरा में ऐसा वर्णन पहले कोई नहीं कर सका, एक स्त्री होने के कारण कवि क्षमा ने कर दिया।

आराद् भूरि मनोरमा वसुमती रेजे सपुष्पोद्भमा
वल्गन्ति स्म विकासिपद्मवदनाः श्रीपद्मिनीनां गणाः.
सौभाग्याङ्कपरागयुक्सुमनसस्तेनुस्तथान्दोलनं
सञ्चेरुः प्रमदावनेषु मधुपाः पूर्वर्तुदिव्योत्सवे।।

(मीरा के पहले दिव्य ऋतूत्सव में चारों और फूलों से भरी वसुंधरा विराज रही थी, पद्मिनियाँ खिलते कमलों से जगमगा रही थीं, सौभाग्य से चिह्नित पराग वाले फूल हिलोर ले रहे थे, प्रमदवनों में मधुप विचर रहे थे।)

इसी तरह राजा के द्वारा आयोजित रात्रि के उत्सव का वर्णन अपनी रंगों की छटा के कारण अनोखा बन गया है।

तद्रात्रौ परिपूर्णचन्द्रविसरद्दुग्धप्रवाहोपम-
ज्योत्स्नापूरपरिप्लुता समजनि क्रीडावनी भूपतेः।

येन प्रादुरुपेतबन्धुविभवा विस्मृत्य तात्कालिकं
क्षीरोदार्णवकेलिमुग्धमनसः सम्मोदमन्यादृशम्।। 58

चाँदनी रात में क्रीडा करते लोग ऐसे लगते हैं, जैसे क्षीरसागर में केलि कर रहे हों। पूर्णचंद्र से झरती ज्योत्स्ना दूध की धाराएँ बहाती लगती है। इस क्रीडा में निरत लोग अपना देश काल भूल जाते हैं।

मीरालहरी की मार्मिकता मीरा के पति भोजराज की मनोवेदना और अंतर्द्वंद्व के चित्रण के कारण भी है। इससे रचना में द्वन्द्वात्मकता, भावों की तीव्रता, तनाव और गहनता आ गई हैं। क्षमादेवी की भाषा भी तदनुरूप गहराई और ऊँचाई दोनों को पा लेती है। व्याकरण और शब्दविन्यास पर अपना असाधारण अधिकार वे यहाँ प्रकट करती हैं।

मृष्टान्नं परिभुज्य बन्धुनिकरो यावत्प्रमोमुद्यते
तावत्पञ्चशराग्निना नृपसुतस्तीव्रेण दन्दह्यते।
मीरा नन्दसुतं तदेकहृदयाऽऽनन्देन दाध्यायते
वैषम्यं रसयोरिदं सहचरी सन्चिन्त्य दोदूयते।। 60

(बंधुवांधव मिठाइयाँ खा खा कर और अधिक प्रमुदित हो रहे हैं, राजपुत्र मीरा के पति तीव्र कामाग्नि से और भी और भी जल रहे हैं, मीरा आनन्द से नंदसुता के ध्यान में और अधिक और अधिक डूबती जा रही है, यह सारी विसंगति देख कर सहचरी (धाय) और भी खिन्न होती जा रही है।)

यहाँ *प्रमोमुद्यते, दन्दह्यते, दाध्यायते* तथा *दोदूयते* जैसे सन्नंत क्रियापद संस्कृत भाषा की अपूर्व समृद्धि का प्रत्यय देते हैं। इन पदों के द्वारा उत्पन्न चमत्कार को अन्य भाषा में व्यक्त करना कठिन ही है। इसी के आगे क्षमादेवी ने इस विसंगतिबोध और मार्मिक बनाते हुए कहा है -

अद्योन्मुद्रितकैतवादिकुसुमामोदः सरीसृप्यते
कान्तेनामलचन्द्रिकाम्बरधरा रात्रिर्जरीह्रष्यते।
सर्वत्रापि वसन्तमञ्जुलतरा लक्ष्मीर्जरीजृम्भ्यते
वृद्धा वीक्ष्य विरागिणीं वरवधूं हाहेति रोरुद्यते।। 65

मीरालहरी प्रकरणवक्रता, भावसंकुलता तता संवगों का अनोखा निदर्शन है। यह काव्य नारीस्वातंत्र्य का गरिमामय गुणगान भी है। क्षमा देवी मीरा के पति भोजराज की सराहना करती हैं। उनकी सहिष्णुता व अन्तर्वेदना को कवि ने बड़ी संवेदनसीलता के साथ समझा है। भोज की मृत्यु से करुण रस का प्रवाह बह उठा है (23),साथ ही विरोध विसंगति का तानाबाना भी काव्य के संविधान और गहराता गया है (24)।

मीरालहरी की दुर्लभ विशेषता कवि के द्वारा मीरा के पदों को संस्कृत में ढ़ाल कर प्रामाणिकता तथा तत्तद्देशकालोचित वातावरण के निर्माण की कुशलता में है। मीरा देवर के सताये जाने पर तुलसीदास को पत्र लिखतीं हैं,

मीरा के प्रश्न (28) तथा तुलसी दास के पद का बहुत ही सुंदर अनुवाद क्षमादेवी ने यहाँ किया है (29-30)। अंत में मीरा का सारी लौकिकताओं और क्षुद्रताओं को निरस्त कर के समग्र आनंद के अनुभव में विश्रांति का चित्रण भी उतना ही हृदयहारी है। कर्षन्ती गुणसौरभेण जनतारोलम्बवृन्दानि सा (34) - इस तरह के कथनों में रूपक तथा पर्यायवक्रता दोनों एक साथ सध गये हैं। मीरा की अकंप्य आस्था के चित्रण के लिये वैषम्य और अर्थांतरन्यास इन दोनों अलंकारों का प्रयोग कितना सटीक है -

क्वेन्द्रश्रीः क्व पथि श्रमः क्व च सुखं हर्म्ये क्व वार्तिर्वने
मृष्टान्नं क्व सुवर्णपात्रकलितं भैक्ष्यं क्व कन्थार्पितम्।
क्व प्रासादगृहं सतूलशयनं शय्याऽश्मसु क्वाध्वनो
नूनं निश्चितचेतसां तृणसमः कष्टाचलानां गणः।।

(कहाँ इंद्र की लक्ष्मी और कहाँ रास्ते में मजदूरी, कहाँ महलों के सुख और कहाँ वन के दुःख, कहाँ सोने के बर्तनों में पक्वान्नों का भोग, तो कहाँ कथरी में डाली गई भीख, कहाँ प्रासादों में कोमल रुई से भरे गद्दों पर शयन और कहाँ मार्ग में पत्थरों पर पड़े रहना! निश्चय ही निश्चय से सधे मन वालों के लिये कष्ट के पहाड़ों की पाँतें तिनके की तरह होती हैं।)

मीरा के दिव्यभाव का निरूपण सांग रूपक के द्वारा जिस तरह क्षमा देवी ने साध लिया है, वह भी संस्कृतकविता की निधि ही है। इसमें उन्होंने पांडित्य, कविता, साधना और सिद्धि का समागम रच दिया है।

दिव्यां प्रेमलतामनेकविधिभिः सम्पोष्टुकामा सती
शश्वत्तां प्रणिधानयोगपयसासिञ्चत् प्रयत्नेन सा।
व्याचिक्षेप विकल्पकृत्तृणचयं तन्मूलसारक्षयं
संवृद्धिं च निनाय मानसवनीरक्षाकरी वल्लरीम्।। 39

मीरालहरी स्त्री के स्वाभिमान गौरव व उसके अपने स्वराज्य की गाथा भी है। क्षमादेवी ने मीरा बाई के संदर्भ में स्वतन्त्रता और स्वराज्य शब्दों का उचित ही यहाँ प्रयोग किया है (उत्तरखण्ड 44)।

अंत में मीरा का श्रीकृष्ण से सायुज्य मिथकीय पद्धति से चमत्कारपूर्ण वर्णन करते हुए अद्‌भुत रस का भी निर्वहण में उपयोग किया गया है

अध्याय 7
क्षमादेवी के चरितपरक महाकाव्य

क्षमा राव की साहित्य साधना की परिणति उनके संतों के चरित्र पर आधारित तीन महाकाव्यों में हुई है। तीनों संत महाराष्ट्र से संबद्ध हैं। कवि को इस पर गौरव क बोध भी है, वह महाराष्ट्र की धरती के इन सपूतों की गाथा प्रस्तुत कर सकी।

<u>तुकारामचरितम्</u>

तुकारामचरितम् 9 सर्गों का महाकाव्य है। इसके कुल पद्यों की संख्या 435 है। क्षमाराव ने 1946 में इस काव्य की रचना आरंभ की तथा 1 अप्रैल 1947 के दिन इसे पूरा किया। यह काव्य उन्होंने अपने पिता को अर्पित किया है। 1950 में यह प्रकाशित हुआ।

विषयवस्तु –

प्रथम सर्ग का शीर्षक *मूलपुरुषप्रशंसनम्* है। इसमे तुकाराम की वंशपरंपरा का परिचय प्रस्तुत किया है। तुकाराम का वंशपरंपरा विश्वंभर तथा आमा से आरंभ हुई। विश्वंभर इंद्रायणी नदी के किनारे पिहू ग्राम में व्यवसाय करते थे। एक बार में माता की आज्ञा से पांडुरंगपुर गये, जहाँ उन्हें भगवान् पांडुरंग ने दर्शन दिये। इस स्थल की पवित्रता उन्हें आमंत्रित कर रही थी -

क्वचित् स्थलीं दृष्टिविलोभनीया-
मपश्यतां तौ तुलसीपवित्राम्।
यतो वहन् धूपमनोज्ञगन्धः
समाजुहावेव समीपमेतौ। 1.19

तुकाराम क पूर्वज विश्वंभर की पत्नी आमा की भगवान् पांडुरंग में बहुत भक्ति रही, पर उनके बेटे नास्तिक थे। संतान की ममता के कारण वे नास्तिक पुत्रों का साथ न छोड़ पाईं। माता की ममता व संतति के प्रति मोह का चित्रण कवि के नारीमनोविज्ञान के सूक्ष्म अध्ययन का परिचायक है (1.38-46)।

अपने गाँव लौटने के बाद दंपति की पांडुरंग के प्रतिभक्तिभावना बढ़ती गई। एक दिन भूमि खोदते हुए उन्हें रुक्मिणी और माधव की सुंदर युगलमूर्ति

मिली। विश्वंभर ने वेदविद् ब्राह्मणों से उस मूर्तियुगल की प्राणप्रतिष्ठा कराई। शेष जीवन उन्होंने भगवद्भजन में अर्पित किया व परम धाम सिधार गये।

विश्वंभर के दो पुत्र थे। दोनों विलासी और भोग तथा ऐश्वर्य में लिप्त रहने वाले निकले। वे गाँव छोड़ कर राजधानी आ गये। माता आमा को अपने आराध्य पांडुरंग के द्वारा निषेध किये जाने पर भी बहुओं के साथ गाँव छोड़ने के लिये विवश होना पडा। दोनों पुत्रों ने राजसेवा की और युद्ध में मारे गये। उनकी बहुओं में एक तो चिता पर जल कर सती हो गई। दूसरी बहू आसन्नप्रसवा थी, वह अपने पिता के घर चली गई। माता आमा भी गाँव लौट आई और उसने अपना शेष जीवन पाडुरंग की भक्ति करते हुए बिताया।

द्वितीय सर्ग का नाम जन्मादिसङ्कीतनम् है। इसमें 281 श्लोक हैं। विश्वंभर और आमा के कुल में तुकाराम का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम बालाजी था और माता का नाम सुंदरी। क्षमा देवी को इस सर्ग में तुकाराम के जन्म के वर्णन के पश्चात् उनके बाल्यकाल व बाललीलाओं के वर्णन का अवसर मिला था, जिसका उन्होंने उपयोग नहीं किया है। उनकी रुचि तुकाराम के जीवन के संघर्षों व दुःखद अनुभवों के निरूपण में अधिक है।

तुकाराम के जन्म के बारहवें वर्ष में उनकी माता उन्हें ले कर पांडुरंग के मंदिर गईं। वहाँ देवाराधन करते समय आकाशवाणी ने बालक तुकाराम का महत्त्व उद्घोषित किया।

तुकाराम के अग्रज आरंभ से ही विरक्त थे, वे घर छोड़ कर चले गये। उनके पिता और फिर माता ने संसार छोड़ दिया। घर सँभालने का दायित्व तुकाराम पर आ गया। वे ऋण ले कर के व्यापार के लिये निकल पडे, मार्ग में प्रलय के समान झंझावात में पता नहीं चला सहयात्री कहाँ बिला गये। तुकाराम ने पांडुरंग को पुकारा, तो प्रभु उनकी रक्षा के लिये आ गये।

पिता ने तुकाराम का विवाह उनके बाल्यकाल्य में ही कर दिया। पहली पत्नी रुग्ण रहती थी, इसलिये दूसरा विवाह किया। तुकाराम दरिद्रता और अभाव के बीच जीते रहे। वेदना और कष्टों के बीच तुकाराम ईश्वर का दर्शन कर के जिस अपार आनंद का अनुभव करते हैं, उसका चित्रण कवि क्षमा देवी ने तल्लीन भाव से किया है।

तनुरजनि मे हृष्टा स्विन्ना प्रकम्पसमाकुला
नयनयुगलादश्रुस्रोतः पपातनिरर्गलम्।
अहह चपला तावन्नष्टा ममाक्षिसुखं च तत्
तदनु सरितस्तीरं प्राप्य क्षणात् तिरोदधे।। 2.28

(मेरा काया पसीने से भीग गई, रोमांचित हो गई, काँप उठी, आँखों से निरर्गल अश्रुधार बह चली, आह, फिर वह झलक अचानक विलीन हो गई, मेरा आँखों का सुख छिन गया, नदी किनारे पहुँच कर प्रभु अंतर्धान हो गये।)

तुकाराम को सूदखोर बार बार घेर कर परेशान करते हैं। उनके हितैषी उन्हें समझाते हैं कि नारायण का नाम जपने से दरिद्रता दूर नहीं हो जाती।

तीसरे सर्ग का नाम *वाणिज्यविनाशः* है। तुकाराम की अपने आराध्य के लिये व्याकुलता का चित्रण कवि ने यहाँ तल्लीन भाव से किया है। भक्ति में डूबे हुए तुकाराम अपनी सारी पूँजी गँवा देते हैं और धूर्तों के द्वारा ठगे जाते हैं। लोग उनसे मूल्य दिये बिना सामग्री ले लेते हैं। तब उनके आराध्य पांडुरंग उनके प्रतिनिधि बन कर लोगों से उनका धन वापस ले कर उन्हें देते हैं। पर कोई धूर्त पीतल का कंगन सोने का बता कर उन्हें लूट लेता है। नमक बेच कर उन्हें लाभ होता है, पर तुकाराम किसी का दुःख देख नहीं सकते। वे अपनी रही सही संपत्ति भी एक विपत्तिग्रस्त ब्राह्मण को दे देते हैं। गाँव के लोगों के बीच उनका बड़ा उपहास होता है। यहाँ तक कि उन्हें प्याज की माला पहना कर गधे पर बिठा कर गाँव में सवारी निकाली जाती है। उनकी दो पत्नियों में पहली पत्नी उन्हें बहुत लताड़ती रहती है, दूसरी सहनशील है, संकट के समय वह अपने आभूषण उन्हें दे देती है। पहली पत्नी के तीखे वचन कैसे हैं - यह देखें –

बुभूक्षया मरिष्यामो वयं त्वदुपजीविनः।
गृहिणः प्रथमो धर्मः स्वकुटुम्बस्य पोषणम्।।
स्वजनं क्षुधया तप्तं वीक्षितुं सहसे कथम्।
पाण्डुरङ्गोऽपि ते देवः करुणालववर्जितः।।
किमेतादृशमाराध्य लभ्यते त्वत्परिश्रमैः।
अलं तव जपैर्ध्यानैः कीर्तनैः कण्ठशोषणैः।। 3.3-5

(तुम्हारे आसरे रहने वाले हम लोग तो भूख से मर ही जायेगें। गृहस्थ का पहला धर्म है अपने कुटुंब का भरणपोषण करे। तुम अपने घर के लोगों को भूख से तड़पते कैसे देख पाते हो। तुम्हारे आराध्य पांडुरंग भी निष्करुण हैं। ऐसे आराध्य के लिये खट कर तुम्हें क्या मिलता है? तुम अपना जप, ध्यान और कंठ सुखाने वाले ये कीर्तन – सब बंद कर दो।)

शकुन्तसन्तर्पण नामक चौथे सर्ग में 41 श्लोक हैं। भौतिक कष्टों के बीच तुकाराम का आध्यात्मिक वैभव पराकाष्ठा पर पहुँच रहा है। कवि ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि जैसे किसान खेती के लिये खटता है, पर फसल पक जाने पर सारा कष्ट भूल कर प्रमुदित होता है उसी प्रकार आध्यात्मिक प्रयास में साधक को आरंभ में कष्ट झेलना होता है, दीर्घ तपस्या के बाद वह परमात्मा से एक्य का अनुभव करता है, तो उसे वह सुख मिलता है, जो शाश्वत और अहार्य होता है।

कृषीवलः श्राम्यति भूरि सौम्यः

कृषेः समारम्भविधौ प्रसक्तः।
प्रमोदते सस्यविपाककाले
विस्मृत्य कष्टं ह्यनुभूतपूर्वम्।।
आध्यात्मिकश्चापि तथा प्रयासो
दीर्घैस्तपोभिः क्रियते नरेण।
स च स्व काले परमात्मनैक्यं
प्रपद्य शश्वत् सुखमेत्यहार्यम्।। 4.6-7

तुकाराम के आध्यात्मिक आभा से परिपूर्ण व्यक्तित्व का गरिमामय चित्र इस सर्ग में उभरता है। एक एक शब्द की सार्थकता तथा स्थिति को मूर्त करने की भाषा की क्षमता व अपनी बिम्बात्मकता और सजीवता में यह अपूर्व है –

अस्पृष्टस्तुतिनिन्दनः स्थिरमतिर्याति स्म वीथ्यां यति-
र्बुक्कद्भिः शुनकव्रजैरनुगतो राजाध्वनीव द्विपः।

(जिसे न स्तुति छू पाती थी, न निंदा, ऐसा वह स्थिरमति यति गली में जा रहा था, लोग उसके पीछे लगे थे, जैसे राजमार्ग पर चलते हाथी के पीछे कुत्ते लगे हों।)

इसी सर्ग में अकाल का मार्मिक वर्णन है। तुकाराम का परिवार भुखमरी की स्थिति में है। लोग उनका उपहास करते हैं और पूछते हैं कि तुम्हारा पांडुरंग कहाँ है? विकट संकट के समय उनकी पहली पत्नी और एक पुत्र सदा के लिये उनका साथ छोड़ देते हैं। तुकाकाम को एक खेत की रखवाली का काम मिलता है। पक्षी खेत चुगते रहते हैं और वे भजन में तल्लीन हैं। खेत बर्बाद हो जाता है। खेत का स्वामी तुकाराम को पकड़ कर ग्रामसभा में ले जाता है और उन पर मामला दाखिल कर देता है। ग्राम का मुखिया खेत का निरीक्षण करने आता है तो देखता है खेत में सात खारी अनाज है। वह खेत के मालिक के लिये उसका अपेक्षित हिस्सा दो खारी अलग करवा कर शेष अनाज तुकाराम के लिये दिलवा देता है। पर तुकाराम बचा हुआ धान्य लेने से मना कर देते हैं।

पाँचवें सर्ग का नाम *दिनचर्यावर्णनम्* है। इसमें 48 श्लोक हैं। तुकाराम की द्वितीय पत्नी उनके द्वारा खेत में अनाज का अपना हिस्सा स्वीकार न करने के कारण चिढ़ती है, वह उन्हें उपालंभ देती है। तुकाराम तुपचाप सब सुन कर पांडुरंग के लिये नया मंदिर बनवाने में लग जाते हैं। वे इसी समय ब्राह्मणभोज का आयोजन भी करते हैं। पत्नी आवली मन ही मन कुपित और खिन्न होती हुई भी इस सारे सेवाकार्य में उनका साथ देती है। एक दिन भोजन ले जाते समय मार्ग में वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ती है। अपने समक्ष साक्षात् मुकुंद को देख कर वह उनको भी खरीखोटी सुना देती है। भक्त के उपालंभ

का यह विलक्षण उदाहरण है। तुकाराम पत्नी को सांत्वना देते हैं। एक बार तुकाराम शीत से काँपती एक बुढ़िया को देख कर अपना दुकूल उसे ओढ़ा देते हैं। ईर्ष्या में भर कर आवली सोचती है – इस दुष्ट ने मुझे तो कभी कोई उपहार नहीं दिया। तब पांडुरंग उसके लिये नये नये वस्त्र ले कर उपस्थित हो जाते हैं। आवली उन्हें पहन कर रिश्तेदारों के यहाँ चली जाती है। उसे इतने मँहगे वस्त्र पहने देख कर लोग सोचते हैं कि इसका पति चोर है। महिलाओं की तरह तरह की बातों का रोचक चित्रण कवि ने यहाँ किया है -

विकूणिताक्षी निजगाद काचित्
प्रच्छन्नगुप्तं तदिदं किलासीत्।
अन्याब्रवीत् पत्युरयं प्रसादो
वाणिज्यलाभेन तदर्जितं स्यात्।। 5.27

तुकाराम संसार को ईश्वरमय देखते हैं, सबका दुख उनका दुख हो जाता है, चोर उनका धन चुका कर ले जाते हैं वे प्रमुदित हो कर देखते रहते हैं - -

सिद्धः स एव परकीय शिशुं रुदन्तं
दृष्ट्वा स्वकीयमिव चेतसि दूयते यः।
चोरैर्हृतेऽपि निखिले निजवित्तकोषे
न क्लिश्यते स्वपरवस्तुभिदाविहीनः।। 5.72

छठे सर्ग का नाम हरिगणेशभोजनः है। आवली पति से कहती है कि आज गुरुजन की पुण्यतिथि है। भोजन के लिये कुछ ले आओ। तुकाराम खेत से अनाज लेते हैं और मधुमक्खियों के छत्ते से शहद लेने लगते हैं, तो मधुमक्खियाँ उनसे झूम जाती हैं। पांडुरंग का स्मरण करने पर मधुमक्खियाँ चली जाती हैं। भोजन के समय तुकाराम का मन होता है कि पांडुरंग उनके साथ भोजन करें। तत्क्षण हरि वहाँ आ कर उनके साथ भोजन करते हैं।

चिंचिडापुर में चिंतामणि नाम का ब्राह्मण तुकाराम को भोजन के लिये आमंत्रित करता है। तुकाराम उसके यहाँ जाते हैं, और उसके पाखंड का उद्घाटन कर देते हैं।

सातवें सर्ग का नाम नष्टप्रत्यागमः है। इसमें 47 श्लोक हैं। देशपांडे नाम के किसी ब्राह्मण ने शास्त्रज्ञान के लिये कठोर तप किया। भगवान् ने उसे आदेश दिया कि तुम तुकाराम के पास जाओ,उन्हीं से तुम्हें सच्चा ज्ञान मिलेगा। वह तुकाराम पास आया। तुकाराम ने उसे मराठी में अपने द्वारा रचे ग्यारह अभंग दिये। देशपांडे को उनसे कुछ भी संतोष न हुआ और वह फिर तप करने चला गया। फिर आकाशवाणी ने उस बताया कि तुकाराम से ही सच्चा ज्ञान मिल सकता है। रामेश्वर नाम का एक और ब्राह्मण था, वह तुकाराम को शूद्र बताकर समाज में उनका तिरस्कार करने लगा। अंततः तुकाराम के मन की

निर्मलता और उनकी साधना के आगे ऐसे सारे पाखंडियों को झुकना पड़ा। निष्कर्षतः कवि कहती हैं –

अरिरपि भवेत् सन्मित्रं ते मनो यदि निर्मलं
उरगशरभौ न त्वां हिंस्तः स्थितावपि सन्निधौ।
पिशुनकुवचो जालं भायाद्वचः करुणामयं
प्रतिभयमहादावज्वाला भवेदपि शीतला।।7.36

(शत्रु भी मित्र बन जाये, यदि तुम्हारा मन निर्मल हो। चाहे उरग (साँप) हो या शरभ, तुम्हारे बगल में रह कर भी वे तुम्हें हानि न पहुँचायें। चुगलखोरों के ईर्ष्याभरे वचन तुम्हारे लिये करुणा के कथन बन जायें, और महावन के दावानल शीतल हो जायें।)

आठवें सर्ग का नाम *शिवाजीसमागमः* है। मुंबाजी नाम का एक ब्राह्मण तुकाराम को बड़ा त्रास देता रहा। दैवयोग से वह बहुत बीमार पड़ गया। तुकाराम उसके घर जा कर उसकी परिचर्या करते। तुकाराम की कीर्ति दूर दूर फैलती जा रही थी। शिवाजी को उनके विषय में पता चला तो उन्होंने उपहार भेज कर उन्हें दर्शन के लिये निमंत्रित किया। तुकाराम ने उत्तर में कहलवाया कि मुझ में दर्शनीय कुछ है नहीं। तब शिवाजी स्वयं उनके दर्शन के लिये उनके निवास पर आये। तुकाराम ने उनके द्वारा दिया गया सोना स्वीकार नहीं किया। शिवाजी ने वह सोना ब्राह्मणों में बँटवा दिया। शिवाजी तुकाराम से इतने प्रभावित हुए कि वे उन्हीं के पास रहने लगे। तब उनकी माता जिजाबाई ने आ कर तुकाराम से कहा कि मेरा बेटा इस तरह संन्यासी बन जायेगा, तो राज्य कौन चलायेगा। तब तुकाराम ने शिवाजी को राज्यधर्म का उपदेश दिया।

यदीच्छसि त्वं तरितुं भवाब्धिं
भव स्वधर्माचरणे प्रसक्तः।
जहात्यपः किं पवनाय मत्स्यः
खगोऽपि किं मुञ्चति खं जलाय।।

(यदि तुम भवसागर पार करना चाहते हो, तो अपने धर्म के पालन में लगे रहो। मछली क्या हवा के लिये जल को छोड़ती है, पक्षी क्या पानी के लिये आकाश को त्यागता है? (इसलिये तुम्हारा राजधर्म छोड़ना ठीक नहीं है।)

प्रसन्नवैकुण्ठम् नामक नवें सर्ग में 55 श्लोक हैं। तुकाराम के भक्तों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही थी। एक बार कोई विद्वान् ब्राह्मण अद्वैतवेदांत पर स्वयं लिखा हुआ अपना ग्रंथ उन्हें सुनाने आया। वह अपना ग्रंथ सुनाने

लगा तो तुकाराम ने कान बंद कर लिये। पूछने पर उन्होंने कहा – मैं अद्वैत में विश्वास नहीं करता।

कुछ लोग तीर्थयात्रा पर जाने के पहले तुकाराम से मिलने आये। तुकाराम ने उन्हें एक कड़वी तुंबी दी और कहा कि इसे भी तीर्थजल से स्नान कराना। सारे तीर्थों के जल से अभिषिक्त हो कर तुंबी कड़वी ही बनी रही। इसी सर्ग में शिवाजी तुकाराम से फिर मिलने आते हैं और यवन सेनापति यह जानकर कि शिवाजी तुकाराम के यहाँ रुके हुए हैं, उनको मारने की योजना बनाता है। तुकाराम शिवाजी को बचा लेते हैं।

अंततः विष्णु स्वयं तुकाराम को अपने धाम ले जाने के लये आते हैं।

छंदोविधान तथा शैली – इस काव्य में उपजाति सर्वाधिक प्रयुक्त छंद है। इसके अतिरिक्त वियोगिनी, शार्लविक्रीडित, पृथ्वी, मालिनी, स्रग्धरा आदि छंदों का यथाप्रसंग अच्छा प्रयोग कवि ने किया है।

तुकाराम के जीवनदर्शन को समग्रता में कवि यहाँ व्यक्त कर सकी हैं। इसके लिये उपमाओं का प्रयोग बहुत सटीक है। तुकाराम अपने आराध्य से कहते हैं -

जीर्णपर्णमिव वायुना हृतं
जीव एष कुरुतां गतागतम्।
काष्ठलोष्टकनकेषु मे समा
बुद्धिरस्तु जहि देव मे तृषाम्।। 4.28

(हवा में उड़ गये सूखे पत्ते की तरह यह जीव आता जाता रहता है। मेरी बुद्धि काठ, ढेले और सोने में समान बनी रहे, हे देव, मेरी तृष्णा को मिटा दो।)

तुकाराम के अभंगों की अनुगूँज इस महाकाव्य में सुनाई देती है। कवि ने आकाशवाणी के द्वारा उनके पदों को वेद के तुल्य घोषित करा दिया है।

मधुरवचनैः पद्यस्रग् या बुधेन विनिर्मिता
निखिलनिगमश्रेणीसारं बिभर्ति निबोध ताम्।। 7.12

क्षमा देवी की कविता में अलंकार सहज रूप से खिंच कर चले आये हैं।

इन्द्रायणी यत्र वरस्रवन्ती सुरस्रवन्तीव परिस्रवन्ती।
शिवङ्करी स्पृष्टशिवोदकानां विराजते भूरि भुवं पुनाना।। 1.3

यहाँ इंद्रायणी नदी के विशेषणों में वरस्रवन्ती, परिस्रवन्ती, शिवंकरी और भुवं पुनाना का प्रयोग परिकर अलंकार ला देता है। सुरस्रवन्ती (देवनदी गंगा) से उसे उपमा देते हुए कवि ने पूरे पद्य में यमक का भी चमत्कार भर दिया है।

तुकाराम के पूर्वजों में आमा की भक्ति का चित्रण प्रभावशाली है।

माता सुताभ्यामुहस्यमाना-

प्यचञ्चला भक्तिमती च तस्थौ।
भावस्थिराणामितरोक्तिजालैः
कदापि चेतांसि न विक्रियन्ते।। 1.45

अर्थांतरन्यास अलंकार का यहाँ कवि ने सधा हुआ प्रयोग किया है। बेटे हँसी उड़ा रहें, भक्तिमती माता अकंपित है – यह विशेष कथन है। इस के समर्थन में सामान्य कथन कवि ने किया है - भाव में स्थिर लोगों के चित्त इतर जनों के उक्तिजाल से विकृत नहीं हो सके। विशेष का समर्थन सामान्य से करने के कारण अर्थांतरन्यास अलंकार है। *भावस्थिर* शब्द का प्रयोग कालिदास की अत्यंत गरिमामयी गूढ पदावली *भावस्थिराणि जनन्तरसौह्रदानि* का स्मरण दिला देता है। चित्त शब्द का प्रयोग भी सारे पद्य के भाव को गहन दार्शनिक बोध से जोड़ देता है।

कुक्षिम्भरिः (1.12, पेटू) अनेडमूकः (1.13) दीप्तानलार्कद्युतिः (1.14), शयनीयलग्ना (2.10),ललयाञ्चकार (5.37) जैसे प्रयोग इस महाकाव्य में कवि की शब्दसाधना के उन्नत आरोहण को द्योतित करते हैं। तुकाराम के जन्म के समय होने वाली आकाशवाणी के द्वारा उनके नाम को तु, का और राम पदों की सार्थक विवृति कराई गई है -

श्रुता खवाणी त्वमवेहि नाम्नः
कृतिस्तु का राम इवोज्ज्वलस्य। 2.4

तुकाराम के भौतिक जीवन की विपन्नता जितनी ही दहलाने वाली है, उनकी आध्यात्मिक साधना व अकंप्य निष्ठा उतनी ही प्रेरक है। तुका को ताना देती हुई उनकी पत्नी कहती है –

त्वदीयबालाः परमक्षुधार्ताः
पुरा विचिन्वन्ति पथि प्रकीर्णान्।
अवस्करे धान्यकणानपास्तान्
कुटुम्बिभिः कुक्कुटशावकेभ्यः 2.37

(तुम्हारे बेटे भूख से एकदम बेहाल हो कर मुर्गों के साथ रास्ते में कचरे के ढ़ेर पर फैंके गये अनाज के दाने चुगते रहते हैं।)

तुकाराम के चरित्र के द्वारा क्षमादेवी ने हिंदू समाज में व्याप्त पाखंड, रूढिवादिता, जाति के नाम पर विद्वेष व सवर्णों के दोहरे मानदंडों पर कठोर आघात किया है। पहले ही पद्य में कवि ने कह दिया है - तुरीयो वर्णानामपि तदितरैः पूजितगुणः – (1.1)- सबसे निचले वर्ण का व्यक्ति – शूद्र – भी गुणों के कारण सवर्णों के लिये पूज्य हो सकता है। काव्य में नामदेव का स्मरण उचित ही उन्होंने किया है। शिवाजी के द्वारा दिये गये उपहारों को अस्वीकार करना इस काव्य के अत्यंत प्रभावशाली प्रसंगों में से एक है। तुका कहते हैं -

अयि नरपते वाजिच्छत्रप्रदीपविजृम्भणा
न खलु विषयव्यावृत्तानां मनागपि मादृशाम्।
निखिलनृपसम्मानोद्बन्धाद् विमोचय मां हरे
किमिति विषमे संसाराब्धौ निमन्त्रयसि प्रभो।। 8.15

(हे राजा, घोड़े, छत्र, दीपक की आभा ये सब मेरे जैसे विषयपराङ्मुख व्यक्ति को कुछ भी नहीं खींच सकते। हे हरि! मुझे राजा के सारे सम्मानों के बंधनों से मुक्ति दिला दो। हे प्रभो! मुझे क्यों संसारसागर में लौटने के लिये निमत्रित कर रहे हो?)

तुकाराम का परधामगमन अद्‌भुत रस की सृष्टि करता है।

तैरालोकि तदा किलाम्बरतले देदीप्यमानद्युति-
र्दिव्यस्यन्दनसंहतिर्द्रुततरं क्षोणीतले गाहिनी।
तत्रासन् कमलासनाच्युतहराः स्वस्वप्रियामोदिताः
गन्धर्वैः परिगीयमानयशसो देवर्षिभिः सेविताः।। 9. 52
तदनु तदनुगास्तं द्रष्टुमौत्सुक्यभाजः
त्रितयमखिलमह्नां निन्युरुन्निद्रनेत्राः
ददृशुरथ विदूरादम्बरे लम्बमानं
किमपि मलिनमुर्वीमापतन्मन्दमन्दम्।। 9.54
तैरबोधि पतितं च तन्मुनेर्झल्लरीपटयुतो हि रल्लकः
हर्षशोकभयभक्तिविस्मयैरुत्तरङ्गहृदयाश्च ते स्थिताः।। 9.55

तुकाराम के सायुज्य के लिये सागर में जा मिली नदी का उपमान भी प्रसंगोचित है।

निष्क्रम्य देहात् पदमापभर्तुः
शैलाच्चुता वारिधिवारिनिधिं नदीव।

इस काव्य में *कर्तव्यलोपो हि कृणाति चेतः* (1.65) जैसी सूक्तियों से आकर्षण बढ़ गया है।

श्रीरामदासचरितम्

श्रीरामदासचरितम् महाराष्ट्र के संतों पर क्षमा राव द्वारा विरचित महाकाव्यशृंखला की दूसरी कड़ी है। इस महाकाव्य में 13 सर्गों तथा 618 श्लोकों में समर्थ स्वामी रामदास का जीवनचरित प्रस्तुत किया गया है। सर्गों में न्यूनतम श्लोकसंख्या पहले सर्ग में 34 तथा अधिकतम श्लोक बारहवें सर्ग में 85 हैं। इस महाकाव्य में क्षमाराव की भाषा, शैली व संकल्पदृष्टि *श्रीतुकारामचरितम्* की अपेक्षा और प्रौढ हुए हैं।

महाकाव्य की प्रास्ताविक (फारवर्ड) सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् ने लिखा है। महाकाव्य की प्रशस्ति में वे लिखते हैं – "Two years ago Kshama

Row, who is recognized as a gifted Sanskrit writer, gave us the life of Tukārāma in Sanskrit. This new book gives the life of Rāmadāsa which, I hope will appeal to Sanskrit readers not only for nobility of its theme but also for the grace and charm of its style." श्रीराधाकृष्णन् का यह प्रास्ताविक 16 मार्च 1953 की तारीख में लिखा गया।

क्षमा राव को महाराष्ट्र प्रदेश पर गर्व है। *श्रीरामदासचरितम्* में वे लिखती हैं कि यह महाराष्ट्र प्रदेश कितना सुंदर व पावन है, जहाँ शिवाजी जैसे रणधीरों ने भास्वर चरित्र का विस्तार किया, जहाँ देवनदी के समान गोदावरी बहती है, जिसका तट भगवान् राम के चरणचिह्नों से पावन बना है –

धन्यं महाराष्ट्रमिदं मनोज्ञं
श्रीनामदेवादिमहर्षिभिर्यत्।
तथा शिवाद्यै रणधीरवर्यै-
र्व्यधायि भास्वच्चरितैः प्रशस्यैः।। 1.6
गोदावरी तत्र परिस्रवन्ती
सरित् सुरम्या सुरनिम्नगेव।
यस्यास्तटं दाशरथेः पदाब्ज-
परागपुञ्जेन बभूव पूतम्।। 1.7

पहले सर्ग में रामदास की वंशपरंपरा का ऐतिहासिक क्रम से संक्षिप्त परिचय तथा रामदास के माता-पिता रेणु देवी और सूर्याजी पंत का वर्णन है। जैसे सरोरुह (कमल) को सूर्य खिला देता है, उसी तरह सूर्य के समान सूर्याजी पंत ने इस तीन सौ साल पुरानी अपनी वंश परंपरा को विकसित किया –

सूर्याजिपन्तोऽनयद् विकासं सरोरुहं सूर्य इव प्रभाते (1.8)।

रेणुदेवी और सूर्याजी के दो पुत्र हुए। दूसरे पुत्र रामदास के जन्म के पूर्व ही एकनाथ आदि मुनियों ने भविष्यवाणी की थी कि हनूमान् का अवतार होगा (1.21-22)। रामदास का जन्म उसी मुहूर्त में हुआ जिस में दशरथ पुत्र राम जन्मे थे। अतः उनके जन्म के बाद रामजन्मोत्सव मनाया गया।

श्रीरामजन्मोत्सववासरेऽलं
शुभावहे चैत्रसिते नवम्याम्।
आरभ्य सूर्योदयतो बभूव
सूर्याजिपन्तः श्रुतिपाठमग्नः।। 1.23
दिनमणिरथ यावद् द्योतते व्योममध्ये
विकिरति च स भक्तः पुष्पपत्राणि विष्णौ।
समजनि सुतरत्नं तावदस्य प्रियायां

दशरथदयितायां यत्क्षणे रामचन्द्रः।। 1.24

शिशु का कांतिमय रूप देख कर पिता उन्हें नारायण के नाम से भी बुलाते, अपने जन्म दिवस के कारण वे रामदास के नाम से भी जाने गये और सामर्थ्य के कारण समर्थ कहलाये (1.26)।

दूसरे सर्ग में रामदास का शैशव तथा कौमार्य, उनके क्रीडाएँ व पराक्रम का ओजस्वी वर्णन है। क्षमादेवी की भाषा बालक्रीडाओं के वर्णन में उसी तरह की क्रीडा करती चलती है, अनुप्रास, लालित्य और लय तदनुसार ढलते जाते हैं। जैसे –

लीलापटुः सर्वबटून् सलीलं
लीलासु सर्वासु जिगाय बालः।। 2.3

इसी सर्ग में रामदास का हनुमान् के साथ श्रीराम-जानकीदर्शन व उनकी पहाड़ की अधित्यका में तिरोधान, उपनयन तथा पिता सूर्याजी पंत की निधन वर्णित हैं। मित्रों के द्वारा उपहास किये जाने पर उनका कुए में कूद कर अंतर्धान होना, फिर बड़े भाई के पुकारने पर प्रकट होना आदि घटनाएँ भी इस सर्ग में वर्णित हैं।

तीसरे सर्ग में रामदास की शिक्षादीक्षा, श्रीराम का उनके सामने प्रकट हो कर म्लेच्छों से आक्रांत धरती को मुक्त करने का संदेश, उनका वैराग्य, माता तथा परिवारजनों व पुरोहितों के द्वारा उनके विवाह के प्रयास वर्णित हैं। चौथे सर्ग में रामदास विवाह के लिये मना करते रहतें हैं, पर माता रेणुदेवी उनके नकार को स्वीकार समझ कर विवाह की तैयारी में जुट जाती हैं। रामदास की रामायणपाठ व भक्तिभाव बढ़ता जाता है। हनुमान् के दर्शन कर के वे रोने लगते हैं।

चौथे सर्ग में रामदास की विवाह की तैयारियों और वरयात्रा (बरात) का आकर्षक वर्णन है। वरयात्रा वधू के घर तक पहुँचती है। वैवाहिक विधि आरंभ हो जाती है। वर और वधू के बीच श्वेत अंतःपट फैला दिया गया है। मंगलाष्टक गाया जा रहा है, वनिताएँ लाजा (लाई) बिखेर रही हैं। तभी विचित्र घटना घटती है, सारे बंधु बांधवों से अलक्षित रह कर वर विवाहपीठ से चुपचाप खिसक कर गायब हो जाता है। कवि ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है -- साक्षात् मरुत् के आत्मज (हनुमान्) के अंश रामदास मरुत् के वेग से भाग निकले और मार्ग में एक अश्वत्थ वृक्ष को देख कर उसके कोटर में जा छिपे (4.37)। फिर तो विवाहमंडप में कोहराम मच गया। माता रेणु देवी बिलख कर रोती रहीं। रामदास के बड़े भाई उन्हें समझाते रहे कि मैंने तो पहले की कह दिया था कि छोटे का मन विवाह करने का नहीं है। यह सारा प्रसंग करुणा और हास्य दोनों का सम्मिश्रण के कारण अपूर्व ही है।

पाँचवे सर्ग में रामदास वृक्ष के कोटर से निकल कर गोदावरी नदी के किनारे किनारे पंचवटी (नासिक) की ओर चल देते हैं। कवि यहाँ स्मरण कराती हैं कि यही वह स्थान है जहाँ राम, लक्ष्मण ने प्रसन्न हो कर गोदावरी नदी के दर्शन किये थे और लक्ष्मण ने यहाँ पर्णशाला बनाई थी (5.3)। यहाँ पहुँच कर रामदास वर का वेष उतार कर केवल एक कोपीन पहने हुए एक गुफा में मुनियों की भाँति रहने लगते हैं। वे वेद-वेदांग व चौदह विद्याओं का अभ्यास करते हैं। रामायण व भागवत में उनका मन विशेष रमता है। यहीं गुफा में उनको भगवान् राम एक बार फिर दर्शन दे कर कहते हैं कि मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। इस घटना के बाद से उनका रामदास नाम प्रसिद्ध हो जाता है। इन्हीं दिनों अपनी पति की शवयात्रा के समय एक स्त्री उनके दर्शन के लिये आती है वे उसे आशीर्वाद दे देते हैं कि तुम अखंडसौभाग्यवती तथा अष्टपुत्रा (आठ बेटों की माँ) बनो। महिला कहती है कि महात्मा जी, आप का यह आशीर्वाद कदाचित् मेरे अगले जन्म में सत्य होगा। सच्ची बात जान कर रामदास प्रभु के सामने गुहार करते हैं। चिता पर ले जाये जाते समय उस स्त्री का पति जी उठता है।

छठे सर्ग में रामदास का पंचवटीनिवास जारी है। उनके आराध्य राम उनके सामने बार बार प्रकट होते हैं। वे उन्हें दक्षिण की ओर प्रयाण करने का आदेश देते हैं, और कहते हैं कि आज से अठारह वर्ष पूर्व दक्षिण में शिव (शिवाजी) नामक एक सत्पुरुष जन्म ले चुका है, तुम्हें उसके पास जा कर उसकी सहायता करनी है। रामदास रामायणकथा का गान करते हुए एक नगर से दूसरे नगर चलते रहते हैं। उनकी कथा सुनने स्वयं हनुमान् आते हैं और उन्हें दर्शन भी देते हैं। एक बार कथाप्रसंग में श्रोताओं में से कोई बटु उनसे विवाद करने लगता है कि हनुमान् ने अशोकवाटिका में जिस वृक्ष के नीचे देवी सीता को देखा उसके फूल लाल थे या सफेद। प्रवचनकार रामदास फूलों का रंग सफेद बताते हैं। बटु उनसे वाक्कलह करने लगता है।

अयि बटो निजवाक्पटुतोत्कटप्रकटनाय कुतः कुतुकी भवान्।
विवदते न कदापि विवेकवान् प्रवचनाधिकृते दधदादरम्।। 6.23

तब कथा में उपस्थित हनुमान् इस विवाद में हस्तक्षेप करते हैं।

सातवें सर्ग में रामदास का विविध तीर्थों व नगरों में पर्यटन वर्णित है। यवनों के अत्याचारों के वर्णन में करुण, बीभत्स व भयानक रसों का परिपाक हुआ है। रामदास वाराणसी पहुँचते हैं, जहाँ विश्वनाथ मंदिर में उनकी डाढ़ी - मूँछ देख कर पूजक उन्हें मुसलमान समझ कर भगा देते हैं, रामदास शांत चित्त से बाहर बैठ जाते हैं, शिवलिंग उनके सम्मुख प्रकट हो जाता है, और मंदिर के गर्भगृह में रखा शिवलिंग गायब हो जाता है। तब भक्त जन समझ जाते हैं कि भ्रम से मुसलमान समझ लिये गये संत के अनादर के कारण ऐसा

हुआ है। तीर्थयात्रा करते हुए रामदास कैलास, बदरी आदि स्थलों से होते हुए दक्षिण में रामेश्वरम् तक जाते हैं।

आठवें सर्ग में रघुपति का आदेश पा कर रामदास वापस पंचवटी होते हुए पैठण नगर आ जाते हैं। इधर उनकी माता रेणुदेवी उनके विवाह मंडप से गायब हो जाने के बाद से उनकी स्मृति में व्याकुल है। माँ की ममता और करुणा का हृदयग्रावक चित्रण कवि ने यहाँ किया है।

तावदस्य जननी चिराद् बटो-
राविवाहदिवसादर्शनात्।
द्वादशद्वितयवत्सरेष्वपि
प्रत्यहं व्यलपदात्मजं यथा।। 8.2
मां विसृज्य सुतवत्सलां प्रसूं
जात मे क्व गतवानसि क्षितौ।
शंस बाहुयुगलेन वेष्टितुं
त्वां कदा दयित शक्नुयामहम्।।
श्वः परश्व उत तद्दिनोत्तरं
नूनमेष्यति सुतो ममेत्यहम्।
त्वत्प्रतीक्षणपरा सहे शुचं
दुःसहामपि च धारयाम्यसून्।। 8.4

रामदास के बड़े भाई माता को समझाते रहते हैं। पाँवों में पादुका, हाथ में जपमाला और गोफण, लंबी जटाएँ, वल्कल और मेखला -- यही उनका वेष है, जिसे देख कर बालक, और स्त्री-पुरुष चकित होते हैं, उनका उपहास भी करते हैं। दुष्ट जन उन्हें परेशान करने का प्रयास करते हैं। कोई निंदक उनसे कहता है कि अपने गोफण से आकाश में उड़ती चिड़िया को मार कर दिखाओ। रामदास उड़ती चिड़िया को मार गिराते हैं। तब ब्राह्मण लोग उन पर पापाचरण का आरोप लगाते हुए उनके प्रायश्चित्त करने को कहते हैं। रामदास उनके बताये गये विधान के अनुसार प्रायश्चित्त करके पूछते हैं कि अब यह चिड़िया जीवित क्यों नहीं हुई। ब्राह्मण इस पर फिर उनका उपहास करते हैं और कहते हैं कि तुम इतने मूर्ख हो कि यह भी नहीं जानते कि प्रायश्चित्त कर लेने पक्षी जावित नहीं हो सकता, प्रायश्चित्त तो अपने पाप को मिटाने के लिये किया जाता है। तब रामदास अपने प्रभाव से पक्षी को पुनरुज्जीवित कर देते हैं। लोग पश्चात्ताप करते हैं।

नवम सर्ग में रामदास के प्रवचनों में लोगों की भीड़ और उनके बढ़ते हुए प्रभाव का वर्णन है। एकनाथ की समाधि पर उनकी एक ब्राह्मण से भेंट होती है, जो उनकी माँ की दीन दशा का वर्णन करता हुआ उनसे अपनी माँ के पास जाने का अनुरोध करता है। रामदास रामनाम का उद्घोष करते हुए अपने

पितृगृह पहुँचते हैं। माँ शोक में अंधी हो चुकी हैं। द्वार पर आहट सुन कर वे अपनी बहू से कहती है कि देख कोई भिक्षुक द्वार पर है, उसे भिक्षा दे दे। रामदास कहते हैं – माँ मैं भिक्षुक नहीं हूँ। उनका स्वर सुन कर माँ स्नेहविह्वल हो जाती है, बेटे को पहचान कर कहती है अरे क्या मेरा नारू आ गया। हाँ मैं आ गया – यह कह कर रामदास भीतर आ जाते हैं।

द्वादशद्वितयवत्सरोत्तरं
पुत्रसङ्गमसुखार्णवोर्मयः।
मातृचेतसि समुत्थिता यथा
रामलक्ष्मणवरेप्सुनो हृदि।. 9.13
तज्जटायुतशिरस्तदाननं
तत्सुबाहुयुगलं पुनः पुनः।
प्रेमसम्प्लुतमनाः परामृश-
न्त्याह सा स्म तनयं तपस्विनी।।
लोलकुन्तलपरिष्कृतं मया
शैशवे तव मुखं यदीक्षितम्।
दर्शनीयमिह यौवनश्रिया
नान्धदृक् तदहमद्य लोकये।।

रामदास यहाँ फिर चमत्कार कर देते हैं। माँ की खोई हुई दृष्टि लौट आती है। माँ अपने बेटे को जी भर कर असीसती है। अब वह जान भी गई है कि उसका छोटा बेटा एक महान् संत बन चुका है।

दसवें सर्ग में रामदास गोदावरी के तट पर अपने आश्रम में लौट आते हैं। प्रभु उनके सामने प्रकट हो कर उन्हें आदेश देते हैं कि अब तुम कृष्णा नदी के तट की ओर चले जाओ। वहाँ संसार का शिव (मंगल) करने वाले साक्षात् शिव के समान शिव (शिवाजी) से तुम्हारी भेंट होगी। उनका शिष्य उद्धव उनके इस तरह पुनः चल पड़ने से व्याकुल हो जाता है और कहता है कि आपके बिना मैं यहाँ नहीं रह सकता। रामदास उसे समझाते हैं और महाबलेश्वर पहुँच जाते हैं। इस सर्ग में वाई और सतारा नगरों में संत रामदास के निवास तथा उन नगरों के आसपास के पर्वतों व रमणीय स्थलों का भी वर्णन है। रामदास कृष्णा व वेणा नदी के संगम पर स्नान पर बालकों के साथ क्रीडा करते हैं। वे पहाड़ की गुफा में एकाकी रहते हैं फिर भी उनका यशःसौरभ दिशा दिशा में फैलता जा रहा है, कस्तूरी मृग कहीं भी रहे, उसकी नाभि में स्थित कस्तूरी का परिमल तत्काल दूर दूर तक फैल जाता है।

एकाकिनो निवसतो गिरिकन्दरेऽपि
क्रीर्तिप्रसारविसरः प्रससार तस्।
क्वापि स्थितस्य हरिणस्य चतुर्दिशासु

कस्तूरिकापरिमलः प्रसरत्यभीक्ष्णम्।। 10.22

इसी समय देहूपुर से उनके दर्शन के लिये संत तुकाराम आते हैं। वे जैसे बाह्य संसार में रहते ही नहीं। दोनों संतों के समागम का वर्णन भी उतना ही रमणीय और अलौकिक है।

को वा प्रभुर्वर्णयितुं प्रसङ्गं
महर्षियुग्मीयसमागमस्य।
चिरात् कलौ श्रीशुकवामदेव-
समागमभ्रान्तिकरं जनानाम्।। 25

दोनों संतों में सौहार्दभाव बढ़ता जाता है, वे एक दूसरे के अनुभवों पर भी बात करते हैं।

इसी सर्ग में रामजन्मोत्सव का वर्णन है। इस उत्सव के लिये आम के पेड़ के शाखाएँ तोड़ने के लिये अंबाजी नामक युवक आम के पेड़ पर चढ़ता है और वहाँ से कुए में गिर पड़ता है। उसकी माता रोने लगती है। रामदास उसे अभयदान देते हैं, और युवक को कुए से बाहर आने के लिये पुकारते हैं। युवक उनकी पुकार पर अक्षत बाहर आ जाता है। कृष्णाजल में अभिषेक करते हुए आकाशवाणी सुनाई देती है और उसके भविष्य कथन के अनुसार फिर उन्हें जल में श्रीराम, जानकी व हनुमान तथा महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाएँ मिलती हैं। जब वे प्रतिमाएँ उठा कर चलने लगते हैं, तो गाँव का सरपंच तथा अन्य ग्रामवासी उन्हें रोक लेते हैं। रामदास प्रतिमाएँ छोड़ कर चल देते हैं। गाँव के लोग प्रतिमाएँ उठा कर ले जाने का प्रयास करते हैं, पर कोई उन्हें उठा नहीं पाता।

ग्यारहवें सर्ग में रामदास और शिवाजी की भेंट का वर्णन भी अत्यंत हृदयावर्जक है। रामदास अपने दासबोध ग्रंथ को पूरा करने में लगे रहते हैं। शिंगण नामक बस्ती में वे गूलर के पेड़ के नीचे बैठे हैं, तभी उनका शिष्य पत्र लिये आता है और बताता है कि आपके दर्शन की लालसा से शिवाजी महाराज यहाँ आ रहे हैं। रामदास शिवाजी को पत्थर, मिट्टी और घोड़े की लीद का प्रसाद देते हैं। शिवाजी रामदास के सामने जो बहुमूल्य रत्न आदि उपहार के रूप में रखते है, स्वामी रामदास उन्हें उछाल कर ग्वालों और गाँव के लोगों के सामने फैंक देते हैं। फिर वे शिवाजी को रघुराजमंत्र की दीक्षा देते हैं। उसके साथ ही पाँच पद्य शिवाजी को सुनाते हैं। इन पद्यों को सुनने से शिवाजी पर क्या प्रभाव हुआ इसका वर्णन कवि ने इप्रकार किया है –

पीयूषकल्पः सरसः प्रबन्धः
पस्पर्श गाढं नृपतेर्हृदन्तः।
ध्यायंस्तमेकाग्रमना मूहूर्तं
समाधिमग्नः स्थितवान् स जोषम्।। 11.27

रामदास शिवाजी को राजधर्म समझाते हैं, तथा भगवदाराधन भी करते रहने का संदेश देते हैं। उनके आदेश के अनुसार शिष्य शिवाजी को श्रीराम का प्रसाद देने लगते हैं, तभी राम की मूर्ति से फूलों की माला नीचे गिरती है, स्वामी जी की शिष्य उसे प्रभु का प्रसाद समझ कर शिवाजी के मुकुट पर लगा देता है। शिवाजी तीन दिन उनके सान्निध्य में रहते हैं और चलते समय कहते हैं कि मेरा मन होता है कि आपका सान्निध्य लाभ नित्य मिलता रहे। इस पर रामदास बहुत सुंदर परिहास करते हैं।

तं प्रत्युवाचाथ मुनिः कथं स्यात्
सङ्गो नरेन्द्रस्य वनेचरेण।
तिमिङ्गिलेन्द्रस्तनुते कदाचि-
न्न सङ्गतिं जातु नभश्चरेण।। 11.48

(मुनि ने उन्हें उत्तर देते हुए कहा कि नरेंद्र और वनचर का क्या संग? सागर का महामत्स्य कभी क्या आकाशचारी पक्षी के साथ संगति करता है?)

शिवाजी उनकी बात स्वीकार कर लेते हैं, पर बहुत उदास हो जाते हैं। वे प्रतापदुर्ग पहुँच कर सारा वृत्तांत अपनी माता को बताते हैं, मुनि के द्वारा दिये गये विलक्षण प्रसाद का तात्पर्य भी वे माता को इसप्रार बताते हैं –

मृदम्ब भूमिं विपुलां तथाश्म-
खण्डाः सदुर्गाणि च सूचयन्ति।
सन्मन्दुरामश्वपुरीषपिण्डा
इति प्रसादस्य मुनेः किलार्थः।। 11. 53

(मिट्टी के द्वारा विस्तीर्ण भूमि, पत्थर के टुकडों के द्वारा दुर्ग और घोड़े की लीद के द्वारा घुड़साल मेरे पास बनी रहे यह आशीर्वाद सूचित होता है।)

बारहवें सर्ग में शिवाजी अपने मंत्रियों के साथ सलाह कर रहे हैं कि शत्रुओं से लोहा लेने के लिये क्या क्या करना चाहिये। गुरु रामदास के बिना वे व्याकुल हैं, वे उनसे पूछे बिना सैन्यप्रयाण नहीं करना चाहते। रामदास को खोजने के लिये चारों और खोजिये भेज दिये गये हैं, पर रामदास का कहीं पता नही। सहसा भरी सभा में शिवाजी के मंत्रणागार में रामदास प्रकट हो जाते हैं।

रामदास के अलौकिक कृत्यों का तदनुरूप भाषा व अंलकार में क्षमादेवी ने चित्र खड़ा किया है –

अथाविरासीत् सहसा समर्थः
सपादुकाङ्घ्रिः करगाक्षमालः।
यथा पुरा व्यासमुनिः पुरस्ताद्
युधिष्ठिरस्याविरभूदकाण्डे।। 12.7

रामदास शिवाजी से पूछते हैं कि इतने अच्छे अच्छे मंत्रियों के रहते तुम मुझ वनवासी का अवलंबन क्यों लेते हो? शिवाजी उत्तर देते हैं -

विनोपदेशाद् व्यसने गुरो ते
किं मन्त्रिभिर्वा ध्वजिनीबलेन।
बिनैव सूर्याहितरश्मिमिन्दु-
निशातमिस्रक्षपणे न हीष्टे।। 12.10

(हे गुरु, आपके उपदेश के बिना मंत्रियों से और सेना से मेरा क्या प्रयोजन? सूर्य किरणों के स्पर्श के बिना चंद्रमा रात के अंधकार को नष्ट नहीं कर सकता।)

रामदास शिवाजी के भक्तिभाव की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि मैं बाह्यदृष्टि से तुम से दूर रह कर भी अदृश्य रूप से सदा तुम्हारे पास हूँ। इसी सर्ग में अफलखोर गुफा में प्यासे शिवाजी को पानी पिलाने के लिये गुरु रामदास का एक शिला को सरकाकर स्फटिक निर्मल नदी प्रकट कर देने का चमत्कारपूर्ण वृत्तांत है। इसके बाद शिवाजी हुकिरि प्रदेश में सामन नाम से दुर्ग का निर्माण कराने लगते हैं। दुर्गनिर्माण के अवसर पर रामदास फिर प्रकट होते हैं और बताते हैं कि इस स्थान पर हनुमान् जी का वास है। फिर वे एक अलग कर दी गई शिला को तुड़वाते हैं, जिसके भीतर से जीवित मेंढक निकलता है। इसके आगे पाडलि नामक गाँव में मुनि रामदास की यात्रा का वर्णन है, गाँव के लोक उनकी व उनकी शिष्यमंडली की खिल्ली उड़ाते हैं, और भिक्षा देने से मना कर देते हैं। रामदास गाँव को छोड़ कर आगे बढ़ जाते हैं। तभी कोपाकुल कोई महाकपि मशाल हाथ में लिये आता है और सारे गाँव में आग लगा कर गाँव को भस्म कर देने पर उतारू हो जाता है। भयभीत गाँव के लोग मुनि रामदास की शरण में आते हैं। रामदास उन्हें अभय देते हैं, तभी वर्षा होने लगती है और गाँव में लगी आग बुझ जाती है। इसके बाद मुनि रामदास का सोलह दिन के लिये समाधि में रहने का तथा मरणासन्न अपनी माँ के पास अंतिम दर्शन हेतु पहँचने का वात्सल्य व करुणा से ओतप्रोत वर्णन है। माता का अवसान करुण, अद्भुत और शांत रसों की अपूर्व समष्टि के साथ वर्णित है।

ततः समर्थो मृदुवागुवाच
मातस्त्वयाऽहं स्मृतमात्र एव।
यथाप्रतिज्ञं तव पादमूलं
सिषेविषुर्दूरत आगतोऽस्मि।।
धन्याऽस्मि यत् प्रासुवि पुत्ररत्ने
इति ब्रुवन्त्या मुनिरङ्घ्रियुग्मे।
शिरो निधायासि न केवलं नौ

माता जगत्या इति तां बभाषे।।
तदनु कृशशरीराप्याशु बद्धाञ्जलिः सा
विचलितुमपि तल्पे न क्षमा स्तोकमात्रम्।
भगवति निहितात्मा रामचन्द्रेऽथ साध्वी
जिगमिषुरिव पत्युर्धाम नेत्रे मिमील।। 13.72

इसके बाद शिवाजी के रायगढ़ से सतारा आने पर माहुलि नदी में स्नान व संध्या वंदन कर के किसी अन्य नगर में भिक्षाटन कर ने के बाद गुरु रामदास उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। वे राम के नाम का ऐसा घोष करते हैं, जिसे सुन कर शिवाजी रोमांचित हो उठते हैं। वे अपना राज्य गुरु को भिक्षास्वरूप अर्पित करने का संकल्प करते हैं और इसके लिये राज्यार्पण लेख भी तैयार कराते हैं। रामदास उन्हें राज्य का पालन करते रहने का उपदेश देते हैं।

तेरहवें सर्ग में शिवाजी की अफज़ल खान से भिड़ंत, रामदास की एक ब्राह्मण द्वारा पुनः परीक्षा लेना, महाबलेश्वर पहँच कर शिवाजी के द्वारा अपने गुरु का खोज करना, फिर एक गुफा में वेदना से कराहते हुए गुरु के दर्शन, गुरु के द्वारा उदरशूल की शांति के लिये व्याघ्री का दूध ले कर आने का आदेश, शिवाजी का वन में जा कर व्याघ्री का दुध दुहना आदि घटनाएँ वर्णित हैं। दूध ले कर शिवाजी चलते हैं तो –

अल्पमार्गममुना गतेन भोः
साधु साध्विति मृदुस्वरः श्रुतः।
पृष्ठतश्च सहसा मुनिर्बभा-
वंशुमानिव घनाम्बुदोद्गतः।। 13. 39
अथविदलितास्त्रं कण्टकैश्च क्षताङ्गं
प्रखरपशुनखैस्तं श्रीसमर्थो विलोक्य।
निरतिशयकरुणार्द्रो विस्मितश्चास्य भक्त्या
नयनविगलदश्रुस्तं परिष्वज्य चाह।।
तृणमिव निजजीवं कल्पयन् प्राविशस्त्वं
यदमिदमरण्यं सङ्कुलं क्रूरसत्त्वैः
तव दृढतरभक्तिस्त्वपीयूषवृष्ट्या
मम जठरकृशानुस्तात निर्वापितोऽभूत्।। 13.39-41

(दूध ले कर सिवाजी कुछ ही दूर तले थे कि उन्होने साधु साधु – (शाबास शाबास) – यह स्वर सुना और तभी बादलों की ओट से जैसे सूर्य निकल आया हो, गुरु रामदास उनके सामने प्रकट हो गये। शिवाजी को पशु के तीखों नखों से लहबलुहान देख कर वे करुणाविगलित हो गये तथा शिवाजी

की भक्ति से विस्मित भी हुए। उनकी आँखो से अश्रुधार बहने लगी। शिवाजी को गले लगा कर वे बोले – अपने प्राणों को तिनके की तरह मान कर तुम क्रूर पशुओं से भरे इस वन में चले आये, तुम्हारी इस दृढ़भक्ति के पीयूष की वर्षा से मेरे जठर में सुलगती आग शांत हो गई है।)

गुरु और शिष्य के अभूतपूर्व संबंधों की पराकाष्ठा इस सर्ग में हुई है। इसकी परिणति करुणा की एक महागाथा रचती है। अंत में रामदास के द्वारा दासबोध ग्रंथ की पूर्ति व उनके परमधाम गमन का वर्णन है।

विधिहतमहाराष्ट्राकाशे प्रतापकरोज्ज्वलः
शिवनृपदिनेशोऽस्तं यातो जनार्तितमोमये।
इति मुनिवरः श्रुत्वेच्छा श्रीपतेर्हि बलीयसी-
त्यभिदधदसौ शोकापन्नो मठान्न ययौ बहिः।।
आश्रमे स्थितममुं दिवानिशं
लोकदर्शनपराङ्मुखं गुरुम्।
वीक्ष्य दुःखितहृदोऽनुयायिनो
मौनमुद्धवमुखा हि भेजिरे।।
षण्मासोर्ध्वं परमरुचिरं दासबोधाख्यकाव्यं
ग्रन्थाकारं पदमणिसरं व्यासकल्पो निबध्य।
श्रीरामाज्ञाद्वयमपि यथावत्तया चानुरुध्य
प्राज्ञः सोऽयं सुखमभिययौ धाम वायोः सुतस्य।।
निस्त्रिंशबुद्धिबलतो भुवि राज्यधर्म-
संस्तापनेन महितौ शिवरामदासौ
वैकुण्ठलोकमवकुण्ठमुपागतौ ता-
वानन्दभागभिननन्द भृशं मुकुन्दः।। 13. 50-53

इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, उपजाति, रथोद्धता, मालिनी, पृथ्वी आदि छंदों का कवि ने वर्ण्यविषय के अनुसार सधा हुआ प्रयोग इस महाकाव्य में किया है। प्रत्येक सर्ग में आद्यंत एक छंद है, अंतिम श्लोकों में छन्दःपरिवर्तन किया गया है, कहीं कहीं सर्ग के मध्यम में भी प्रसंग के परिवर्तन के अनुसार छंद बदला गया है। ग्यारहवें सर्ग में 38 उपजाति छंदों के पश्चात् रामदास के द्वारा शिवाजी के राजधर्म के उपदेश में छंद बदल कर शार्दूलविक्रीडित ले आना क्षमा राव के छंदों के अवसरोचित प्रयोग का अच्छा निदर्शन है। पपरुः (1.22) आदि दुर्लभ क्रियापदों का प्रयोग कवि ने इस काव्य में किया है।

धार्मिक आस्था ने इस महाकाव्य को अलौकिक धरातल पर पहुँचाया है। पर इससे क्षमा देवी के काव्य में यथार्थबोध और लौकिकता की क्षति भी हुई है। पूरे महाकाव्य में प्रत्यक सर्ग में चमत्कारों व अलौकिक घटनाओं का भरपूर वर्णन है। बचपन में खेलते हुए रामदास महावानर को देखते हैं, जो

वास्तव में हनूमान् हैं, उनके साथ ही एक शिविका या पालकी चली आ रही है, जिसमें राम सीता विराजमान हैं (3.18-19)। फिर तो अपने आराध्य राम की आज्ञा से हनूमान बालक रामदास को उठा कर उनके सामने प्रस्तुत कर देते हैं। राम बच्चे के माथे पर हाथ फेरते हैं और नीलवर्ण वे प्रभु उनके हाथ पर रामनाम से अंकित एक पत्ता रख देते हैं। बालक रामदास वह पत्ता पा कर कभी रो रहे है, कभी हँस रहे हैं कभी नाच रहे हैं। यह सारा वर्णन भक्तजनों को तो आनंद से गद्गद कर देने के लिये पर्याप्त है, आधुनिक बोध से उसकी संगति नहीं है।

आसाद्य देशं विजनं हि यावत्
स्तब्धः क्षणं तिष्ठति वानरेन्द्रः।
व्यलोकि तावच्छिबिकोह्यमाना
नरैश्चतुर्भिः परिवेष्टिताऽन्यैः।।
देदीप्यमानं मिथुनं किलासी-
दध्यासितं तच्चतुरस्रयानम्।
एकस्तयोः श्यामरुचावदातो
मनोरमाभूद्रमणी तथान्या।।
विलोक्य नारायणमानयैत-
मित्यादिशद् दिव्यनरस्तमैनम्।
मूर्ध्ना तदाज्ञां प्रतिपद्य सद्यो
न्यधात् कपीन्द्रः पुरतोऽस्य बालम्।।
प्रेम्णा परामृश्य शिरोऽर्भकस्य
परिष्कृतं कुन्तलजालकेन।
न्यधात् करे तस्य च नीलवर्णः
श्रीरामनामाङ्कितपत्रमेकम्।।
नारायणः प्राप्य च पत्रमेतद्
दिङ्मोहसंरुद्धवचाः सकम्पः।
क्षणाद् ररोद प्रजहास सद्यो
ननर्त यावच्छिबिका तिरोऽभूत्।। (2.18-21, 23)

श्रीज्ञानेश्वरचरितम्

यह महाकाव्य क्षमा राव की अंतिम तथा प्रौढतम कृति है। ऐसा लगता है कि क्षमा राव ने महाराष्ट्र के तीन संतों के जीवन पर आधारित महाकाव्यों की शृंखला की परिकल्पना बहुत पहले कर ली थी, और उसका क्रम भी तय कर लिया था। तदनुसार उन्होंने उचित ही पहले *श्रीतुकारामचरितम्* की रचना की, फिर *श्रीरामदासचरितम्* की और अंत में श्रीज्ञानेश्वरचरितम् की। इस क्रम में इतिहास की अपेक्षा विचारधारा के विकास और दर्शन की

उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगामिता को ध्यान में रखा गया। *श्रीतुकारामचरितम्* तथा *श्रीरामदासचरितम्* की रचना क्षमा राव के लिये अपने इस अंतिम महाकाव्य के प्रणयन के लिये की गई साधना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि महाराष्ट्र की संतपरंपरा में श्रीज्ञानेश्वर का अनन्य स्थान है। संत तुकाराम ने तो स्वयं को ज्ञानेश्वर की पादुका बताया था।

शैली की दृष्टि से *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* के पहले चार सर्गों की तुलना में अंतिम चार सर्ग थोड़े अलग प्रतीत होते हैं। लीला राव दयाल अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में बताती है कि उनकी माँ ने पहले चार सर्गों की स्वच्छ प्रति तो तैयार कर ली थी। शेष सर्ग उन्हें क्षमा देवी की रफ कापियों में मिले। लीला राव ने उन्हें क्षितीशचंद्र चट्टोपाध्याय, नागप्पा शास्त्री तथा आर. वी. मतकरी जैसे पंडितों की सहायता से संशोधित किया। संभव है किसी किसी पद्य में इन पंडितों का भी हाथ लगा हो।

श्री ज्ञानेश्वरचरितम् में आठ सर्ग हैं, जिनमें 27 से ले कर 79 तक पद्य हैं। कुल श्लोक संख्या 406 है। पहले दो महाकाव्यों के समान ही शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, मालिनी, शिखरिणी आदि छंदों का प्रयोग है।

विषयवस्तु – महाकाव्य के पहले सर्ग में 57 श्लोकों में ज्ञानेश्वर की वंशपरंपरा तथा पूर्वपुरुषों का वर्णन है। ज्ञानेश्वर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। इनके पूर्वज महाराष्ट्र के गोदावरी नदी के तट पर स्थित पैठण जिले में अपेगाँव के निवासी रहे। इनके पितामह गोविंदपंत तथा पिता विट्ठल थे। विट्ठल बाल्य काल से ही विरागी थे, होश सँभालते ही वे तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। घूमते हुए वे इंद्रायणी नदी के किनारे आलंदीपुरी पहुँचे। यहाँ सिद्धो पंत नाम के सद्गृहस्थ के घर उन्होंने निवास किया। सिद्धो पंत तथा उनकी पत्नी उमा ने अपनी बेटी रुक्मिणी का विवाह उनके साथ करने का प्रस्ताव का। विट्ठल आनाकानी करते रहे, और यात्रा पर आगे चल पड़े। पर कुलदेवी ने स्वप्न में प्रकट हो कर उन्हें रुक्मिणी के साथ विवाह करने का आदेश दिया। विवाह के साथ पाणिग्रहण नामक यह सर्ग समाप्त होता है।

द्वितीय सर्ग में 79 श्लोकों में विवाह के पश्चात् विट्ठल के वैराग्य और संन्यास ग्रहण करने, पुनः गृहस्थ होने तथा प्राणत्याग करने का वर्णन है। सिद्धो पंत अपने दामाद को संन्यास का विचार मन से निकाल देने के लिये समझाते हैं। विट्ठल पत्नी से गंगास्नान की बात कह कर घर से निकल पड़ते हैं। कबीर के गुरु रामानंद से उनकी भेंट होती है। विट्ठल रामानंद को धोखे में रख कर उनसे दीक्षा ले लेते हैं।

गुरु रामानंद रामेश्वर जाते हुए मार्ग में अलिंदपुरी में रुकते हैं। वहाँ रुक्मिणी उनके दर्शन करने आती है और वे उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद देते हैं। फिर उन्हें ज्ञात होता है कि रुक्मिणी के पति को तो वे स्वयं ही भूल से

संन्यास की दीक्षा दे चुके हैं। रामानंद पश्चात्ताप करते हुए तीर्थयात्रा अधूरी छोड़ कर अपने आश्रम लौट आते हैं और विट्ठल को फटकार कर फिर से गृहस्थाश्रम अंगीकार करने का आदेश देते हैं। विट्ठल वापस गृहस्थजीवन अंगीकार कर लेते हैं। इसके कारण विट्ठल को लोकनिंदा और प्रतारणा झेलनी पड़ती है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए कवि लिखती हैं –

अदूषयन् विट्ठलमेव रामा-
नन्दं यतिं चापि निनन्दुरन्ये।
जगर्हिरे केचन रुक्मिणीं च
सीतां यता प्राक् पिशुना अनिन्द्याम्।।(2.42)

(कुछ लोग विट्ठल पर दोष लगाते थे, दूसरे यति रामानंद की निंदा करते थे। कुछ रुक्मिणी को दोष देते थे, जैसे पहले के दुष्ट लोगों ने अनिंद्या सीता देवी को दोष दिया।)

ये दंपति समाज से धिक्कृत और तिरस्कृत होते रहे। ऐसे में ही इनके तीन पुत्रों - निवृत्ति, ज्ञानेश्वर और सोपान एक पुत्री मुक्ता ने जन्म लिया। ज्ञानेश्वर के जन्म का वर्णन करते हुए कवि क्षमा ने लिखा है –

भ्रष्टो हि यावत् सदने शुचीनां
सञ्जायते यत् प्रभुणेरितं प्राक्।
कर्तुं तदन्वर्थमहो कुलेऽस्मिन्
गृहीतजन्मा स बभूव योगी।। (2.46)

(प्रभु श्रीकृष्ण ने गीता में योगभ्रष्ट व्यक्ति शरीर त्याग कर पवित्र श्रीमानों के घर जन्म लेता है – यह जो कहा है, उसी को चरितार्थ करने के लिये योगी ज्ञानेश्वर ने उस कुल में जन्म लिया)।

यहाँ गीता के *शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते* – इस कथन का आधार कवि ने लिया है।

ब्राह्मण समाज द्वारा विट्ठल और रुक्मिणी को सताने तथा उनके पुत्रों का उपनयन करने से मना कर देने के कारण दंपति को होने वाले कष्टों के वर्णन में कवि ने करुणरस की मार्मिक सृष्टि की है। दंपति अनिष्ट निवारण के लिये ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा तथा त्र्यम्बकेश के दर्शन करने के लिये निकल पड़ते हैं। वापस लौटते हुए निवृत्ति को एक गुफा में योगी श्रीगैनिनाथ के दर्शन होते हैं।

संन्यासी के पुत्र होने के कारण ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहनों निवृत्ति, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव और मुक्ताबाई को भी बहुत सताया गया। पंडितों ने ज्ञानेश्वर का उपनयन संस्कार कराने से मना कर दिया, क्यों कि उनके अनुसार शास्त्रों में संन्यासी के पुत्र का उपनयन कराने का विधान नहीं

है। अपनी संतानों के भविष्य की रक्षा के लिये दंपति विट्ठल और रुक्मिणी ने प्रयाग यात्रा की और विप्रों के द्वारा बताये गये विधान के अनुसार संगम में डूब कर प्राण त्याग दिये। इसके साथ ही पितृप्राणार्पण नमक दूसरा सर्ग समाप्त होता है।

तृतीय सर्ग में 27 श्लोकों में ज्ञानेश्वर तथा उनके भाइयों के कष्टपूर्ण जीवन का कारुणिक वर्णन है। ज्ञानेश्वर तथा निवृत्ति को माता पिता के प्रयाग गमन व महाप्रयाण का पता चलता है। दोनों भाई भिक्षाटन करते, छोटा भाई सोपान मुक्ता को सँभालता। इस सर्ग में सभी भाइयों की दिनचर्या का रोचक वर्णन है।

उभौ तदारभ्य तृतीयसोदरं
नियम्य सोपानमथाभिरक्षितुम्।
गृहे समाधाय कनीयसीं प्रियां
प्रजग्मतुर्भैक्ष्यकृते पुरोऽन्तरम्।।
गृहाद् गृहं द्वावपि पर्यटन्तौ
दीनात्मना भैक्ष्यमयाचिषाताम्।
बालद्वयं चापि गृहे विमुक्तं
स्मृत्वा स्वपित्रोर्बहु रोदिति स्म।।
भिक्षाटने वीक्ष्य जनौघमेतौ
विस्मृत्य पित्रोर्निधनादिकल्पम्।
समुत्सुकौ सस्पृहविस्तृताक्षौ
ममार्गतुस्तौ पितरौ तदन्तः।। (3.6-8)

(तीसरे भाई सोपान को बहन मुक्ता की देखभाल करने के लिये घर में छोड़ कर दोनों भाई -- निवृत्ति और ज्ञानेश्वर – भिक्षा माँगने के लिये नगर में निकलते। दोनों एक घर के द्वार से दूसरे घर भटकते हुए दीन हो कर भीख माँगते। इधर दोनों घर में छूट गये बच्चे माता-पिता की याद कर कर के बिलखते रहते। भिक्षाटन करते समय दोनों भाई माता पिता के निधन की बात भूल जाते और उत्सुक हो कर आँखें फाड़ फाड़ कर भीड़ में अपने माता पिता को ढूँढने लग जाते।)

अंत में अपने दिवंगत माता पिता की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिये निवृत्ति और ज्ञानेश्वर निश्चय करते हैं कि पैठण जा कर ब्राह्मणों से शुद्धिपत्र प्राप्त करेगें। इसके साथ ही *शुद्धिपत्रप्राप्तिनिश्चय* नामक यह तीसरा सर्ग समाप्त होता है।

चौथे सर्ग में 64 श्लोकों में चारों बालकों की पैठण यात्रा का वर्णन है। चारों अपने मामा के घर रुकते हैं। पैठण में विप्रों की संसद उनकी शुद्धि के विषय में विचार करती है। पाखंडी विप्र ज्ञानेश्वर की निंदा करते रहते हैं।

ज्ञानेश्वर पैठण में कीर्तन करके रहते हैं। हजारों लोग उनके ज्ञानामृत का पान करने के लिये उपस्थित होते हैं। इन प्रसंगों के वर्णन में कवि ने नामदेव तथा कवि निरंजन के वचनों की यहाँ अवतारणा की है। विप्रों के प्रतिकूल निर्णय देने पर भी ज्ञानेश्वर अपने आनंद में मगन रहते हैं। विप्रजन चारों से प्रश्न करते हैं, चारों भाई-बहन अपनी वाग्मिता से उन्हें निरुत्तर कर देते हैं। उसी समय एक महिष (भैंसा) वहाँ आता है। ज्ञानदेव के यह कहने पर कि महिष में और उनमें कोई अंतर नहीं है, कोई ब्राह्मण महिष को पीटने लगता है, तब ज्ञानेश्वर की पीठ से खून बह उठता है। ज्ञानेश्वर के आदेश से महिष वेदमंत्रों का पाठ करता है। इस अद्‌भुत प्रसंग का वर्णन करते हुए कवि कहती हैं –

अत्यद्‌भुतं षट्‌शतकोर्ध्वकालात् प्राग् गौतमीरोधसि वृत्तमेतत्।
नूनं व्यलोकीति वदन्ति सुज्ञाः पुराविदस्तच्च समर्थयन्ति।। (4.56)

(इस अत्यंत अद्‌भुत वृत्तांत को, जो छह सौ से अधिक वर्ष पूर्व गौतमी नदी के किनारे घटित हुआ, जानकार लोग आँकों देखा बताते हैं तथा इतिहासविद् इसका समर्थन करते हैं।)

पाँचवे सर्ग में 53 श्लोकों में ज्ञानेश्वर के द्वारा ज्ञानेश्वरी गीता का आरंभ तथा सच्चिदानंद नामक मृत बालक को पुनरुज्जीवित करने की अद्‌भुत घटना का वर्णन है। उनके द्वारा किये गये चमत्कारों के प्रभावित हो कर ब्राह्मण उनके शिष्य बनने लगते हैं। अंततः ब्राह्मण समाज ज्ञानेश्वर को विशुद्धिपत्र दे देता है, जिसे ले कर वे पैठण से चल पड़ते हैं। इस यात्रा में ज्ञानेश्वर की रचनायात्रा अनवरत चलती रहती है। ज्ञानेश्वर की पद्यरचनाओं को कवि ने सुंदर रूप में यहाँ अनूदित किया है।

ज्ञानेश्वर नेवास पुरी आ जाते हैं। यहाँ बिसोबा नामक कोई ब्राह्मण उनसे द्रोह करता हुआ तरह तरह की कुत्सित चेष्टाएँ करता है। इस प्रसंग में कवि का कथन है –

स स्पर्धमानः प्रवया विमूढः
प्राज्ञप्रकाण्डेन सता च यूना।
बभूव हास्यास्पदमेव लोके
यथा प्रभाकीट इनेन सार्धम्।। (5.41)

(आयु में वृद्ध व मूर्ख वह बिसोबा प्रज्ञा में प्रकांड युवा ज्ञानेश्वर के साथ स्पर्धा करता हुआ जगहँसाई का पात्र बना, जैसे जुगनू सूर्य से स्पर्धा करने चला हो।)

इसी सर्ग में मुक्ता का कुम्हार के यहाँ मिट्टी का बर्तन खरीदने के लिये जाती है। बिसोबा के कहने पर कुम्हार का बर्तन देने से मना कर देता है। मुक्ता रोती हुई घर आती है। तब ज्ञानेश्वर योगबल से अपनी पीठ को स्वर्णमय बना

लेते हैं और मुक्ता से उस पर पुए बनाने के लिये कहते हैं। विसोबा के हृदयपरिवर्तन के साथ महिषमन्त्रोच्चारण नामक यह सर्ग समाप्त होता है।

ग्रंथनिर्माण शीर्षक छठे सर्ग में 30 श्लोकों में ज्ञानेश्वर के द्वारा मराठी में प्रवचन तथा ज्ञानेश्वरी की रचना की पूर्ति का वर्णन है। ज्ञानेश्वर की वाग्धारा पर कवि मुग्ध है। क्षमादेवी उनकी वाणी में प्रयुक्त मराटी को संस्कृत से संपृक्त बताती हैं। वे अपने देश की भूमि पर भी गर्व व्यक्त करती हैं, जहाँ गोदावरी के किनारे महाराष्ट्रसरस्वती की धार बही, जहाँ राम ने वनवासकाल में निवास किया और जहाँ रह कर गीर्वाणवाणी में नवविभूति का आधान करने वाले भवभूति जैसे कवि ने अपनी रचनाएँ कीं।

गोदावरीरोधसि देवभाषा-
मातुः सकाशात् समावाप्य जन्म।
वत्सा महाराष्ट्रसरस्वतीयं
बभूव सम्पृक्ततमा जनन्या।
भूयिष्ठकालो वनवासिनास्या
नीतो हि रामेण तटे तटिन्याः।
पश्चात् स्वकृत्या भवभूतिरस्मिन्
गीर्वाणवाण्यां नवभूतिमाधात्।
तत्रैव नैके विबुधाग्रगम्याः
स्वमातृभाषाभ्युदयं वितेनुः।
ज्ञानेशकालादभवत् स गोदा-
तटो महाराष्ट्रगिरो यशोभूः। (6.1-3)

लोकभाषा में संस्कृत की अक्षय ज्ञाननिधि को ज्ञानेश्वर जैसे संतों ने जो अभिव्यक्ति दी, उसकी क्षमादेवी ने समाशंसा करते हुए कहा कि संस्कृतवाङ्मय के जिस महार्घ भंडार पर विप्रों ने जो ताले जड़ रखे थे, उनको मातृभाषा की कुंजी से ज्ञानेश्वर के साथ निवृत्ति ने खोल दिया (5.7)।

सातवें सर्ग में 64 श्लोकों में ज्ञानेश्वर की तीर्थयात्रा, पंढरीनाथ के दर्शन, नामदेव से भेंट तथा नामदेव के साथ उज्जयिनी की यात्रा का वर्णन है। नामदेव के साथ ज्ञानेश्वर के मिलन का वर्णन वात्सल्य की धारा में सराबोर करने वाला है। ज्ञानेश्वर व नामदेव की प्रगाढ़ मैत्री के चित्रण में कवि का मन खूब रमा है। नामदेव ज्ञानेश्वर के साथ हो लेते हैं। प्रयाग की यात्रा कर के उज्जयिनी में दोनों संत मृद्गलाचार्य से मिलते हैं तथा ज्ञानेश्वर यहाँ रह कर यज्ञ करते हैं। इसी सर्ग में चांगदेव के द्वारा ज्ञानेश्वर के पास कोरा कागज भेजने तथा ज्ञानेश्वर के द्वारा उस पर पैंसठ छंद लिख कर भेजने का वृत्तांत निरूपित है। तब चांगदेव स्वयं उनसे मिलने आते हैं। ज्ञानेश्वर दीवार को हटाने जैसे चमत्कार दिखा कर उनके अहंकार को नष्ट कर देते हैं। चांगदेव के

द्वारा ज्ञानेश्वर की स्तुति के साथ *चांगदेवदर्पापहरण* नामक यह सर्ग समाप्त होता है।

आठवें सर्ग सर्ग में भाई निवृत्ति के अनुरोध पर ज्ञानेश्वर के द्वारा अमृतानुभव नामक अद्वैतवेदांतपरक ग्रंथ की रचना का वर्णन है। इस सर्ग में ज्ञानेश्वरी तथा अमृतानुभूति – इन दोनों ग्रंथों की विशेषताओं का कवि ने सरस काव्यात्मक वर्णन किया है। अमृतानुभूति के संबंध में वे कहती हैं –

प्रज्ञासमुत्कर्षमिदं सुकाव्यं
ज्ञानेश्वरस्य प्रकटीकरोति।
लोकोत्तरामस्य विचारशक्तिं
प्रगल्भतां विस्मयदां च तर्के।।
अद्वैतसिद्धान्तमिहानुरुद्ध्य
निबद्धकाव्ये कविशेखरेण।
आमूलमान्तं गिरिजाष्टमूर्त्यो-
रद्वैतभावः प्रतिपाद्यतेऽस्मिन्।। (8.7-8)

ज्ञानेश्वरी का वैशिष्ट्य कवि ने इस प्रकार बताया है –

गीतोपदिष्टा हरिणा पुरा या
क्षेमाय लोकस्य कृपाकरेण।
तस्या रहस्यं विशदीकरोति
ज्ञानेश्वरी नाम वचःप्रबन्धः।।

ज्ञानेश्वर की वाणी का अनुकवन करते हुए कवि ने अद्वैतत्त्व की जो विविध निर्शनों के द्वारा यहाँ व्याख्या की है, उसमें संस्कृतकविता ने लोकभाषा में अपनाई गई अपनी ही ज्ञाननिधि को नये कलेवर में फिर से पा लिया है।

समर्थयामास कवीन्द्र एत-
दद्वैतत्त्वं ह्युपमावचोभिः।
एको हि गन्धः कुसुमद्वयस्य
प्रदीपयोरेकरुचिर्यथा हि।
ओष्ठावुभो सङ्गमिते ब्रुवाते
पृथङ् न दृष्टी नयनद्वयस्य।
तथेशदेव्यौ सृजतो जगन्ति
साद्वैतभावाविति निश्चितं हि।। 8.10-11

अष्टम सर्ग में ही पंढरपुर मेले के अवसर पर ज्ञानेश्वर साधुसतों के समागम में समाधि ग्रहण की अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। ज्ञानेश्वर के समाधिग्रहण का करुण तथा अद्‌भुत रस से परिपूर्ण वर्णन यहाँ किया गया है।

कवि ने ज्ञानेश्वर के माता पिता विट्ठल और रुक्मिणी को भी यहाँ अवतरित करा कर उन्हें इस प्रसंग के साक्षी बना दिया है।

दिने बुधे कार्तिककृष्णपक्षे
च द्वादशे दुर्मुखनाम्नि वर्षे।
निज्ञानवृत्ताः सुजनाः समन्तात्
समागता अन्तिमदर्शनोत्काः।।
श्रीगौरकुम्भारमुखाः सवाष्पाः
स्थिता विनिद्रा व्यथितानिरायाम्।
सुहृन्मणिर्ज्ञाननिधेश्च ताव-
च्छ्रीनामदेवोऽविरतं रुरोद।।
संशोधिते कन्दरभूतलेऽस्मिन् सुगन्धिधूपेन च नामदेवः।
प्रचण्डशोकानिलकम्पमानो राज्ञो हरेः कीर्तनमन्वतिष्ठत्।।

श्रीतुकारामचरितम् तथा *श्रीरामदासचरितम्* के ही समान ज्ञानेश्वर के जीवन में घटित अनेक अलौकिक घटनाओं व चमत्कारों का वर्णन क्षमा राव ने इस महाकाव्य में किया है। एक भैंसे को पीटे जाने पर उनके देह से रुधिर बहने लगता है। लोग भैंसे के मुख से वेदमंत्रों का पाठ सुन कर दंग रह जाते हैं। ज्ञानेश्वर मृत व्यक्ति को जीवित कर देते हैं। अपने जीवन काल में वे विष्णु के अवतार के रूप में पूजित हो जाते हैं। इन सब घटनाओं के विवरण के साथ कवि ने इस महाकाव्य में ज्ञानेश्वर के विलक्षण ग्रंथ ज्ञानेश्वरी में प्रतिपादित उनके जीवनदर्शन को विशेष रूप से अभिव्यक्ति दी है।

पूरे काव्य में वैदर्भीरीति तथा प्रसाद गुण का आद्यंत निर्वाह करते हुए अलंकारों का अवसरोचित विन्यास कवि ने किया है। सञ्चचाल चलकाकपक्षकः – (4.1) जैसी उक्तियाँ में अनुप्रास की छटा मनोहारिणी है। भाषा पर साधारण अधिकार के साथ क्षमा ने प्रबंधवक्रता तथा पर्यायवक्रता सन्निवेश इस महाकाव्य में किया है। चौथे सर्ग में महिष के लिये लुलाय तथा सैरिभ जैसे पर्यायों का प्रयोग उनकी भाषासमृद्धि का परिचायक है। ऊपर उद्धृत 5.41 में जुगनू के लिये प्रभाकीट तथा सूर्य के लिये इन शब्द का प्रयोग भी उल्लेखनीय है।

अनेकत्र हृदयग्राही सूक्तियों का प्रयोग कवि क्षमा ने किया है, जिनमें महाकवियों के वचनों की छाया देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ –

लिङ्गं वयो वा गणनां हि नार्हेद्-
दिव्यो यदि स्यात् सहजोऽनुभावः।। 2.67

(यदि सहज दिव्य अनुभाव है, लिंग तथा अवस्था की गणना करना उचित नहीं है।)

यहाँ पर *उत्तररामचरितम्* में भवभूति के कथन – गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः – इस कथन की छाया है। इसी तरह क एक और सुंदर उक्ति है –

रुचा तडिल्लिम्पति न त्विषां पतिं
सुवर्णतामेति न मृत्तिका क्वचित्।। 3.17

(बिजली अपनी कांति से सूरज को वहीं लपेट सकती, मिट्टी सोना नहीं बन सकती)।

क्षमाराव के महाकाव्यों की विशेषताएँ

सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता तथा *स्वराज्यविजयः* – इस त्रयी में क्षमा देवी की जो स्वराज्यचेतना राजनैतिक-ऐतिहासिक बोध के भीतर प्रकट हुई है, वह *श्रीतुकारामचरितम्, श्रीरामदासचरितम्* तथा *श्रीज्ञानेश्वरचरितम्* की इस महाकाव्यत्रयी में आध्यात्मिक चेतना से संवलित हो कर सामने आती है। धर्म और अध्यात्म की ओर रुझान बढ़ते जाने पर भी क्षमा राव ने स्वातंत्र्य के भाव को छोड़ा नहीं है। वे तुकाराम, रामदास और ज्ञानेश्वर की आध्यात्मिक साधना को देश के भवितव्य से जोड़ कर देखती हैं, इसीलिये तीनों महाकाव्यों में बार बार स्वराज्य शब्द का प्रयोग भी न केवल दार्शनिक अभिप्रायों के साथ वरन् उसके राजनैतिक आशयों के साथ भी करती हैं। *रामदासचरितम्* में मुनि एकनाथ के मुख से यह भविष्यवाणी वे कराती हैं -

यद् धर्माभ्युदयाख्यकर्मणि चिरात् प्रावर्ति गाढं मया
तद्विस्तीर्य दृढ़ीकरिष्यति महाराष्ट्रे स्वराज्यं न्वसौ।
तस्मान्मे चरमा स्थितेर्जवनिकाऽधस्तादिदानीं पतेत्
इत्युक्त्वाऽन्तरधान्मुनिः स नचिरात् पूज्यैकनाथः स्वयम्।। 1.34

(यदि मैं सचमुच धर्म के अभ्युदय के कार्य में अब लगा रहा हूँ, तो यह रामदास उस का विस्तार कर के महाराष्ट्र स्वराज्य को सुदढ बनायेगा। तो फिर मेरे जीवन नाटक का अंतिम पटाक्षेप हो जाये- यह कह कर पूज्य एकनाथ मुनि एकनाथ तत्काल अंतर्धान हो गये।)

स्वराज्यचेतना को क्षमादेवी ने धर्मचेतना से जोड़ दिया है। *रामदासचरितम्* में वे कहती हैं –

स्वधर्मरक्षार्थमवश्यमेव
सम्पादनीयं प्रथमं स्वराज्यम्।
तेनैव पारत्रिकमैहिकं च
सुखं भवेदेतदबाध्यसत्यम्।। 11.1

(स्वधर्म की रक्षा के लिये सबसे पहले स्वराज्य हासिल करना चाहिये। उसी से इहलोक व परलोक में सुख मिल सकता है – यह अकाट्य सत्य है।)

रामदासचरितम् में शिवाजी का अवतरण अध्यात्म की आभा से राजशक्ति के आलोकित होने का संदेश देता है। क्षमादेवी का देशोद्धार का भाव यहाँ अव्याहत बना हुआ है।

आक्रान्तमेवं यवनैर्नितान्तं
विमोच्य राष्ट्रं स रिपून्निरस्य।
व्यधान्महाराष्ट्रभुवं स्वतन्त्रां
शोकाकुलं शत्रुकुलं शिवाजिः।। 12.19

आनंदवर्धन ने ध्वन्यात्मभूत काव्य में अलंकारों की अपृथग्यत्ननिर्वत्यता को प्रशस्य माना है। क्षमा देवी की महापुरुष की महागाथा रचती लेखनी से अर्थांतरन्यास, उपमा, रूपक आदि अलंकार सहज रूप में विनिर्मित होते हुए काव्य की संरचना के अंग बनते गये हैं। रामदास के बालरूप का वर्णन करती हुई वे कहती हैं –

आक्रन्दनं स्मेरमुखः सदैव
स्तन्धयत्वेऽपि न विवेद बालः।
कदापि नाविष्कुरुते शृगालो-
चितं रुतं केसरिणः किशोरः।। 2.1

(सदैव मुस्कान से भरे मुख वाले उस बालक ने रोना तो जाना ही नहीं। केसरीकिशोर भला कभी सियार के योग्य रुदन करता है?)

इस काव्य में प्रायः सुपरिचित उपमान ही लिये गये हैं, जिससे कहीं कहीं कविता की ताजगी और कल्पना के चमत्कार की क्षति हुई है। पर उदात्तचरित में इस तरह के उपमान काव्यगौरव के अनुरूप हैं। रामदास के शैशव के वर्णन में ही क्षमा देवी कहती हैं –

दिने दिनेऽसौ परिवर्धमानः
पस्पर्श कौमारदशां मनोज्ञाम्।
समेधमानो हि यथा क्रमेण
नवाङ्कुरः पल्लवपुष्पवत्ताम्।। 2।3

(दिन पर दिन पढ़ते हुए वे कौमार्य की स्थिति में पहुँचे। जैसे बढ़ता हुआ अंकुर क्रमशः पल्लव व पुष्पों से भरता जाता है।)

रामदास की माता ने अपने पति के दुःखद निधन को किस प्रकार सहन कर लिया इसके वर्णन में निदर्शना अलंकार का प्रयोग करते हुए कवि ने कहा है –

सा रेणुदेवी पतिविप्रयोगं

सेहे कथञ्चित् सुतवत्सलत्वात्।
तरुच्युताऽपि व्रततिः प्रसून-
फलोपपत्यै सरसैव दृष्टा।। (3.43)

क्षमादेवी के इन तीनों महाकाव्यों में भाविक अलंकार प्राय आद्यंत पिरोया हुआ है। इस अलंकार के द्वारा कवि एक ओर तो रामदास के तेजस्वी विग्रह और ओजस्वी वाणी को मूर्त करती है, दूसरी और देश की दशा, यवनों के अत्याचार व विभिन्न नगरों, पर्वतों तथा नदियों का भी सजीव चित्र अंकित करती चलती हैं।

रामदासचरितम् में सुंदर सूक्तियाँ भी प्रभाववृद्धि करती हैं। जैसे

प्रभावभाजां शिशुभाव उत्कटा
मनस्विताऽऽविर्भवति स्वभावतः।। (3.12)
सन्मन्दुरां भूमिपतेर्विहाय
शोभेत वाजी रजकाङ्गणे किम्।। 3.40

कहीं कहीं अव्याकरणिक प्रयोग चिंतनीय हैं, जैसे - जागृतः सन् (11.11)।

कालिदास का प्रभाव तीनों महाकाव्यों में देखा जा सकता है। उदाहणार्थ -

इतीप्सितार्थस्थिरनिश्चयाया (रामदासचरितम् 4.22)
विसृष्टपार्श्वानुचरः 11.17

उपसंहार
क्षमादेवी की साहित्यिक उपलब्धियाँ

सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् ने क्षमा राव के महाकाव्य *तुकारामचरितम्* का प्राक्कथन लिखा है, जिसमें उन्होंने इस काव्य के लालित्य (grace) और मनोहारिता (charm) की सराहना की है। के.एम. पणिक्कर तो उन्हें 'निश्चित रूप से हमारे समय की सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवि' ('undoubtedly the most eminent poet of our times') मानते हैं।[1] अमरनाथ झा ने मीरालहरी की प्रस्तावना में क्षमा राव को गार्गी मैत्रेयी आदि की परंपरा में एक विदुषी बताया है, तथा अपनी कुलपरंपरा की रक्षा करने के लिये उनकी प्रशंसा की है। वे लिखते हैं – "यथा प्राग् बभूवुर्वनिताः संस्कृतलब्धवर्णा मैत्रेयीप्रभृतयस्थेदानीमपि सन्ति काश्चिदादरणीया विदुष्यः। तासु पण्डिता क्षमा देवी विदुषी ललामभूता विराजते। नैकपाश्चात्त्यभाषाभिज्ञेयं पण्डितकुलसम्भवा निजकुलपारम्पर्यानुरूपं विद्वद्दीपं सोज्ज्वलं नित्यमभिरक्षत्येव।"

आधुनिक संस्कृतसाहित्य के पुरोधा, पंडित व सुयोग्य पत्रकार व्ही. राघवन् क्षमा राव के प्रशंसक रहे।

क्षमा राव की महाकाव्यकार, कथाकार, जीवनीकार, यात्रावृत्तलेखक और गीतिकाव्यकार के रूप में उपलब्धियाँ असाधारण हैं। इन सभी विधाओं में उन्होंने नवोन्मेष और नवाचार के द्वारा समकालीन संस्कृत साहित्य में अभिनव मानदंड स्थापित किये। महाकाव्य के क्षेत्र में अपने समय की राजनीति व राष्ट्रीय आंदोलन को गीता की संरचना तथा धर्मयुद्ध के भाव से जोड़ कर उसके साथ भारतीय निम्नवर्ग व मध्यमवर्ग के संघर्ष की कथा को गाँधी जी के चरित्र के साथ प्रस्तुत करने का उनका उपक्रम सर्वथा अछूता ही था। अंग्रेजी व फ्रैंच भाषाओं के नये साहित्य से परिचय के कारण उन्होंने संस्कृत में कहानी की विधा को अद्यतन स्वरूप दिया। कहानी को आधुनिक भावबोध व समकालीन घटनाचक्र की प्रस्तुति के साथ गद्य में न लिख कर

[1] प्राक्कथन, कथामुक्तावली

अनुष्टुप् छंदों में लिखा जाये – यह परिकल्पना भी क्षमा राव की कहानियों से आज के संस्कृत साहित्य में आई। उनकी पद्य में लिखी कहानियाँ संस्कृत की नई कथा का प्राणवान् रूप प्रस्तुत करती हैं। गाँव के लोगों की व्यथा तथा विधवा जीवन की विडम्बना का चित्रण इस प्रामाणिकता व नये सामाजिक सन्दर्भों के बीच पहली बार संस्कृत साहित्य में हुआ है। यह एक अन्तर्विरोध है कि पद्य में क्षमादेवी जितनी सहज, सरल और पारदर्शी हैं गद्य में वे भाषा का घटाटोप लाने का उतना ही प्रयास करती है और गद्य में लिखी उनकी कहानियों की अपेक्षा (जो कथामुक्तावली में संकलित हैं) *कथापञ्चकम्* तथा *ग्रामज्योतिः* की पद्य में लिखी कहानियाँ आज की कहानी के ज्यादा निकट हैं। उन्होंने यात्रावृत्त तथा जीवनी इन दो विधाओं को आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थापित व प्रतिष्ठित किया। क्षमादेवी की दो लघु पद्यात्मक रचनाएँ नयेपन की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं- *शङ्करजीवनाख्यानम्* और *विचित्रपरिषद्यात्रा*।

दलितविमर्श, स्त्रीविमर्श तथा स्वराजविमर्श – इन तीन स्तरों पर क्षमा राव का आधुनिक संस्कृत साहित्य को प्रदेय अपने आप में अभूतपूर्व है। सत्याग्रहगीता में वे कथा तो गाँधीजी की लिख रहीं हैं, पर गाँव गिराँव की निम्नवर्गीय महिलाओं के जीवन में भी उसके साथ झाँक रहीं हैं। स्त्री की वेदना को स्त्री के ही स्वर व भावजगत् से अभिव्यक्ति संस्कृतसाहित्य में बहुत कम मिली है। क्षमा राव जैसी इक्की दुक्की महिला कवयित्रियाँ इसमें अपवाद हैं। अपनी आरंभिक रचनाओं में स्वराज के जिस भाव को गाँधी जी की राजनीति के संदर्भ में क्षमा राव ने काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी, उसके मनौवैज्ञानिक, पारिवारिक, व आध्यात्मिक संदर्भों को उन्होंने अपने परवर्ती साहित्य में रचनात्मकता दी।

नवीन शब्द निर्माण – क्षमा देव ने संस्कृत को आधुनिक बनाने के लिये सैंकड़ों नये शब्दों का निर्माण किया। विगत अध्यायों मे ऐसे शब्दों उनके तत्तत् काव्य के विवेचन में उदाहृत कये गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रासंगिक शब्द उनकी रचनाओं में नये मिलते हैं, जैसे – लेखपत्र (रजिस्ट्री), उत्कृष्टाहारगृह (रैस्तराँ), सेवकपारितोषिक (टिप), कञ्चुककोशः (जेब), तन्त्रीसन्देशः (टेलीग्राम), भोजनफलकम् (डाइनिंग टेबल), चक्रगोष्ठी (राउंड टेबुल कांफ्रेंस), धूमवर्तिका (सिगरेट), शीङ्कारध्वनि (सीटी), तन्तुचक्र (चर्खा), मुस्लिममन्दिर (मस्जिद) आदि।

क्षमा राव का संपूर्ण साहित्य संस्कृत साहित्य की सहस्रों वर्षों की परंपरा में ताजी हवा का झोंका है। उद्दाम शृंगार के चित्र उनकी रचनाओं में कहीं नहीं है। मर्यादा और शिष्टता का बोध आद्यंत बना हुआ है। उनकी

कतिपय सीमाओं के बावजूद संस्कृत साहित्य में क्षमा राव का असाधारण महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। भारतरत्न महामहोपाध्याय पुरुषोत्तम वामन काणे के शब्दों में हम आशा कर सकते हैं कि आने वाले समय में क्षमा राव को साहित्यजगत् में और अधिक सम्मान प्राप्त होगा तथा उनकी रचनाओं को समुचित रूप में सराहा जा सकेगा।[1]

[1] I hope that as years roll on, the contributions to Sanskrit literature made by Pandita Kshama Row will receive greater and greater recognition and the charm of her Sanskrit works will be appreciated more and more by generations of the lovers of Sanskrit. (श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, प्राक्कथन)

पुस्तकसूची

क्षमा राव की मौलिक संस्कृत कृतियाँ

उत्तरसत्याग्रहगीता, (महाकाव्यम्), हिन्द किताब, बम्बई, 1948।

कथापञ्चकम्, सहकारी भंडार, नवाकालवाडी, गिर गाँव, बम्बई, 1933।

कथामुक्तावली, न.मा. त्रिपाठी लि. प्रिंसेस स्ट्रीट मुम्बई, 1955, द्वितीय सं.,1969।

ग्रामज्योतिः, जी.सी. चटर्जी एण्ड कम्पनी, 8, भूपेन्द्र बोस एवेन्यू, कलकत्ता 1954।

मीरालहरी, निर्णयसागर प्रेस, बाम्बे, 1944, द्वितीय सं., 1953 ई.

विचित्रपरिषद्यात्रा, बम्बई, 1938।

शङ्करजीवनाख्यानम्, न्यूमरीन लेन, मुम्बई, 1936।

श्रीतुकारामचरितम्, ना.मिश्र पा. त्रिपाठी, प्रा. लि. बाम्बे, 1947।

श्रीरामदासचरितम्, न.मा. त्रिपाठी, प्रा. लि., बाम्बे, 1953।

श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, न.मा. त्रिपाठी, प्रा.लि., प्रिन्सेस स्ट्रीट, मुम्बई, 1877 वि. 1955ई.।

सत्याग्रहगीता, पेरिस (1932), बम्बई, न.मा. त्रिपाठी प्रा.लि. (1956, 1957, 1958)।

स्वराज्यविजयम्, न.मा. त्रिपाठी प्रा.लि. प्रिन्सेस स्ट्रीट, बाम्बे, 1962।

संदर्भ ग्रंथ

संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास, सातवाँ खंड, प्रधान संपादक – पं. बलेव उपाध्याय, संपादक जगन्नाथ पाठक, उ.प्र, संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2000ई.

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यानुशीलनम् – सं. रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद्, सागर, 1965, हिंदीखंड, पृ.18

संस्कृत साहित्य – बींसवीं शताब्दी – राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रिय संस्क-त संस्थान, नई दिल्ली, 2000

लेख

डा. हरींद्र भूषण जैन - *क्षमा राव – व्यक्तित्व और साहित्य, आधुनिकसंस्कृतसाहित्यानुशीलनम्* – सं. रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद्, सागर, 1965, हिंदीखंड, पृ.13-30

गजानन लक्ष्मण रेगे – *साहित्यचन्द्रिका पण्डिता क्षमादेवी, मञ्जूषा*, अप्रैल 1958

एन.ए. गोरे – *दि लेट पंडिता क्षमा राव*, इंडियन पी.ई.एन. पत्रिका, जुलाई 1954

सुधाकर राय – *साहित्यचन्द्रका स्वर्गीया पण्डिता क्षमा*, दिव्यज्योतिः, जुलाई, 1961

अप्रकाशित शोध प्रबंध

क्षमा राव : पण्डिता, : एक अध्ययन, शर्मा, कृष्णकान्ता, सागर, 1967, पी.एच.डी.

क्षमा राव, पण्डिता तथा उनकी काव्यकला, त्यागी, गायत्री, आगरा, 1968, पी.एच.डी.

क्षमा राव, पण्डिता, एंड हर वर्क्स, कल्चरल लिटरेरी स्टडी, (हि). अनिता, वाराणसी (काशी.विद्यापीठ.), 1982, पी.एच.डी.

क्षमाराव, पण्डिता : ए स्टडी ऑफ हर पर्सनॉल्टी एंड वर्क्स. क्षीरसागर, रंजना, पी. नागपुर, .